# हँसने वाली लड़कियाँ



लक्ष्मीनारायण लाल

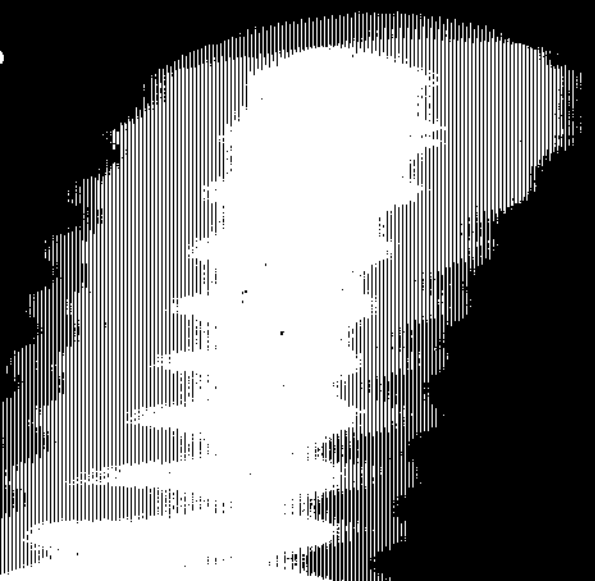

लक्ष्मीनारायण लाल

नाटक 'हँसने वाली लड़कियाँ' के अभिनय-प्रदर्शन, नाट्य रूपांतरण, अनुवाद, प्रकाशन, प्रसारण तथा फिल्मीकरण आदि किसी भी शौकिया या व्यावसायिक इस्तेमाल या काम के लिए प्रकाशक की लिखित पूर्व अनुमति अनिवार्य है।

चिरंजीव आनन्दवर्धन
और
सौभाग्यवती अनुपमा को

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा प्रकाशित

●

© डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल

●

मूल्य : २५.००

प्रथम संस्करण : १९८८

●

लोकभारती प्रेस
१८, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा मुद्रित

# पराए
# मंच से
# अपनी भूमि पर

• •

पिछले इतने समय तक नाट्य-क्षेत्र में कर्मरत होते हुए मेरी समझ में यह नहीं बैठता था कि 'रंग' के साथ 'मंच' का भला क्या संयोग है ? आधुनिक होने और आधुनिक बने रहने, कहलाने के भ्रम और मोह में यहाँ तक नहीं सूझा कि रंगमंच पश्चिम के थियेटर का अनुवाद मात्र है। फिर भी हम यह कैसे कहते हैं—भारतीय रंगमंच, हिन्दी रंगमंच, अपना रंगमंच। जो विदेशी अनुवाद है अपने शाब्दिक अर्थ में ही, वह अपना कैसे हो सकता है ? हाँ, केवल 'मंच' 'थियेटर' का अनुवाद हो सकता है। पर मंच' के साथ जो 'रंग' जुड़ा है, वह 'रंग' तो 'थियेटर' की परिकल्पना में ही नहीं है। वह रंग 'ड्रामा' में संभव ही नहीं है। 'रंग' ड्रामा के क्षेत्र के बाहर की चीज है। ड्रामा जमीन पर, यथार्थ पर, तर्क पर, ट्रेजिडी पर ही आधारित है। जमीन पर कभी 'रंग' नहीं किया जाता। रंग तो भूमि का तत्व है। मंच का रंग से कोई सरोकार नहीं हो सकता। रंग का सरोकार केवल भूमि से ही है। रंग ही भूमि है। भूमि ही रंग है। यह कहाँ पता था ?

अति लघु बात लागि दुख पावा।
काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा॥

पर यह बुनियादी बात हमें कोई क्यों बताता ? जिस आधुनिक राज व्यवस्था में हम थे, और उसी के उत्तराधिकार में जो आज हम हैं, इसका लक्ष्य ही यही है कि हमें अपना कुछ भी याद न रह जाय। अपनी कोई स्मृति न रहे। इतना ही नहीं, स्मृतियों का दमन भी किया गया। पारसी थियेटर से लेकर आज तक का तथाकथित आधुनिक भारतीय थियेटर हमारी अपनी कला भूमि, रंगभूमि की स्मृतियों को जिन्दा दफनाने का ही क्रमिक, विधिवत प्रयास है। उसी प्रयास का कर्मफल हमारे सामने है। ऐसा कर्मफल जहाँ 'मंच' यानी थियेटर ने अपनी सारी सम्भावनायें ही चुका ली हैं। ऐसा क्यों हुआ, थियेटर कर्मी यह समझने में भी असमर्थ हो चुका है। उसकी नज़रों में इसकी सारी प्रासंगिकता ही समाप्त है। हालाँकि उसने तमाम साधनों, तत्त्वों, स्रोतों का खुलकर इस्तेमाल किया। जैसे आधुनिक व्यक्ति समाज को बाजार समझकर इस्तेमाल करता है। रचना नहीं—इस्तेमाल। रचना नहीं—उपयोग। उसने कितनी बेशर्मी से लोक, आदिवासी कलारूपों से अपना भुगतान किया। उसने संस्कृत, ग्रीक और अन्य शास्त्रीय क्षेत्रों—भारत, चीन, जापान आदि से प्रेरणा लेने की भरसक कोशिश की। उसने एक ओर आर्थर मिलर, दूसरी ओर आइनेस्को और तीसरी ओर ब्रेख्ट की बेशर्म नकल की। उसने दूसरों के सारे कपड़े पहनकर अपने सारे कपड़े उतारकर देख लिए। उसने अनेक दर्शकों के लिए स्टूडियो थियेटर बनाकर देख लिए। अमरीका, जर्मनी, इंगलैण्ड से नंगापन, मार-पीट, सेक्स, अपराध, का नंगा नाच कराके मजे लूट लिए। उसने फिल्मी अभिनेताओं और अभिनेत्रियों को मंच पर लाकर देख लिया। यानी यहाँ तक हुआ कि अब कुछ और बचा ही नहीं करने को। न कोई जगह, न कोई शैली, न कोई पत्रकारिता, न कोई कर्म-कुकर्म। सारे हथकंडे, सारे देशी-विदेशी करतब करके हमने देख लिए। राजनीतिक, नुक्कड़, मुक्ता-काशी, हुल्लड़, उदास, संत्रासी, व्यावसायिक, शौकिया, न जाने कितना-कितना करके देख लिया। और अभी थियेटर की यह बहस पूरी भी नहीं हुई कि हमारा मंच शौकिया हो या व्यावसायिक, राष्ट्रीय हो या क्षेत्रीय,



इससे पहले ही वर्तमान रंगमंच पर पर्दा गिर रहा है।

'मंच' पर इस तरह 'प्रोसीनियम थियेटर' 'ड्रामा' का पर्दा उन्नीसवीं सदी उत्तरार्ध में भारत की जमीन पर उठा। उस थियेटर के खिलाफ भारतेन्दु ने अपनी भूमि के रंग के संदर्भ में कहीं 'तमाशा' और कहीं 'लीला' की बात उठाई थी और अपनी परम्परा तथा कला-भूमि पर जमकर काम किया था। पर पारसी थियेटर के सामने उनकी अकेली आवाज़ कारगर सिद्ध न हो सकी। फिर प्रोसीनियम थियेटर, आधुनिक थियेटर का वह उठा हुआ पर्दा अब गिर रहा है।

इस लम्बे दौर में हम अपनी 'भूमि' से कटकर ड्रामा और थियेटर की जमीन पर चले गए—जिसको हमने नाम दिया—'रंगमंच'। रंगमंच पर काम करते-करते संयोग और सौभाग्य वश हमारा ध्यान 'मंच' से अपनी 'भूमि' की ओर गया। 'भूमि' की स्मृति से ही हमें आभास हुआ कि चाहे जो हो अपनी स्मृतियाँ मिटती नहीं, ऐसी स्मृतियाँ कालांतर में प्रत्यक्ष होने लगती है। और दमित स्मृतियाँ तो भयंकर रूप धारण करती हैं। इसके अनेक उदाहरण विश्व के राजनीतिक क्षेत्र में देखने को मिले हैं। रंग क्षेत्र में इतनी निराशा, असंतोष, अशांति के पीछे बुनियादी तौर पर वही दमित स्मृतियाँ हैं। हमारे दर्शक का मन-प्राण 'रंग' का है, 'मंच' का नहीं। यह सत्य हमारी स्मृति में कहीं दफ़न होकर भी जीवित है। हम 'मंच' के मूक दर्शक नहीं, हम अपने 'रंग' के सहकर्मी, सहभोगी, दर्शक ही नहीं, उसके भाव के ग्राहक भी हैं—यह स्मृति हमारे अवचेतन में विद्यमान है। तभी हम केवल दर्शक नहीं, उसके ग्राहक समाज हैं।

अनावश्यक को बहुत कुछ भूलते या भुलाते जाना मस्तिष्क की एक अनिवार्य आवश्यकता है। पर इस 'ड्रामा' और 'थियेटर' के सौ-सवा सौ वर्षों के समय में रंगमंच में जो 'रंग' जुड़ा रह गया था, वह हमें कभी नहीं भूला। यह सौभाग्य की बात है। इसी रंगबोध की अनिवार्य आवश्यकता थी कि रंग अपने अनिवार्य तत्व 'भूमि' से जुड़े। रंगमंच और रंगभूमि इन दो अवधारणाओं को केवल शाब्दिक स्तर पर नहीं उठाया

जा रहा है, इस पर ध्यान रहे। क्योंकि रंगमंच के लिए रंगभूमि शब्द-संज्ञा, महाराष्ट्र और गुजरात में सदा विद्यमान रहा है। पर मात्र संज्ञा, शब्द, नाम से कोई अन्तर नहीं पड़ता। अन्तर पड़ता है आत्मबोध से—अपनापन से। अपना क्या है, आत्मबोध क्या है, हमारी स्मृति ही उसका आधार है और रचना (अनुवाद नहीं) का स्रोत है। हमारे पुरखों ने कहा है—स्मृति नहीं, अपनापन नहीं, तो व्यक्ति नहीं, बल्कि काल भी नहीं और रचना भी नहीं। 'मैं वही हूँ जो मुझे स्मरण है।'

ठीक इसके विपरीत आधुनिक जीवन की प्रवृत्तियाँ विशेष संदर्भों में, विशेषकर 'आधुनिक-थियेटर' हमारी स्मृति के परिदृश्य को लगातार छोटा करता चला गया है। पहले अपने रंग, रूपक, फिर अपने नाटक पर पर्दा गिराकर हमने ड्रामा का पर्दा उठाया, फिर यथार्थवाद का, फिर पदार्थवाद का, फिर न जाने क्या-क्या, जिसे स्वभावतः न हम समझ पाए न उससे दर्शकों को बाँध पाए। अंततः इस नतीजे पर पहुँच गए कि थियेटर में कुछ नहीं है। थियेटर पर पर्दा गिरता है। लोग-बाग अपने-अपने घर में ही रहें, तेजी से विकसित होते हुए संचार माध्यमों से अपना मनोरंजन करें। इस मनोरंजन को वे एक मूल्यवत्ता से जोड़ रहे हैं और सनसनीखेज बात को वे विधिवत मौज-मस्ती का पर्याय बताते हैं। यह सब कितना विधिवत हुआ है, सोचकर आँख फटी की फटी रह जाती है। जैसे राजनीतिक स्तर पर उन्होंने चाल चली—पहले 'ह्वाइट मैन बर्डन' का, फिर भारत उद्धार का, और आजादी के बाद आधुनिकता का, ठीक उसी तरह थियेटर, कला, साहित्य सभी रचना-स्तरों पर यही किया गया। पहले तो हमें कुछ भी अपना याद न रह जाए; दूसरे, जो कुछ हम करें, रचें, उसकी प्रेरणा और प्रभाव उन्हीं का हो, तीसरे, जब भी वे चाहें पर्दा गिराकर तेजी से विकसित होते हुए नियंत्रित संचार माध्यमों में हमें धकेल दें, हाँक दें। यही था उनका ड्रामा, यही था उनका थियेटर। इसका सिर्फ इतना ही उद्देश्य था, और आज भी है कि जो कुछ भी हमें बताया जाता है, जो कुछ भी हमें दिखाया जाता है, उसे हम स्वीकार करते चलें।



इसके लिए अनिवार्य आवश्यकता थी हम अपनी 'भूमि' से, हम अपनी जड़ से, स्रोत से, रंग से, स्मृति से कट जायँ, भूल जायँ अपने आप से, क्योंकि अपना कुछ न याद रहने पर ही हम दूसरों की दिखायी, बताई हुई चीज को स्वीकार करने को बाध्य होते जाते हैं।

अपनी 'भूमि' क्या है—रंग-स्तर पर? 'भूमि' भू धातु से बना है। भू माने होना, कुछ घटित होना—कथमयं भवेत्साम, अस्यः किमभवत? (मातंग लीला ६/२६) उत्पन्न होना—यदपत्यं भवेदस्याम (मनुस्मृति ६/१२७) फूटना, निकलना, उदय होना, भू धातु का अर्थ है 'वह होना जो पहले नहीं था'। 'श्वेतीभू'—सफेद होना। कृष्णीभू—काला होना। आविर्भू—प्रकट होना। होने वाला, उगने वाला, उपजने वाला, चित्तभू, आत्मभू आदि आदि। और भू को अगर विसर्ग से जोड़ दिया जाय, भूः तो इसका अर्थ है पृथ्वी, अंतरिक्ष अथवा 'स्वर्ग दिवं मरुत्वानिव भोक्ष्यते भुवम्' (रघुवंश ३/४, १८/४)। किसी विशेष प्रक्रिया मात्र को भी 'भू' कहते हैं। उस विशेष प्रक्रिया के बाद जो कोई निर्मित हो, जिसमें कुछ धारण करने, सहन करने, प्रजनन करने की क्षमता हो वह 'भूमि' है। 'भू' धातु है 'मि' उपसर्ग—अतः भूमि वह विशेष स्थल है, स्थान है, जो किसी विशेष निर्माण-प्रक्रिया के बाद ही बनकर तैयार होता है। हमारी नाट्य-परंपरा में कोई भी ऐसा नाटक नहीं था, जो इस भूमि का न रहा हो। भूमि का था तभी उसकी भूमिका थी। अभिज्ञान शाकुंतलम् में स्थल के भूमि-निर्माण की प्रक्रिया ही नांदी पूजा है—'विधाता की जो पहली सृष्टि है, वह जल, देवताओं तक ले जाने वाली वह अग्नि, जो होम करने वाला है वह यजमान, काल का विधान करने वाले सूर्य और चन्द्रमा, शब्द अर्थात् आकाश, सृजन, का जो मूल है, वह पृथ्वी, जो प्राणियों में प्राण संचार करती है वह वायु—इन आठ प्रत्यक्ष रूपों में जो प्रकट है, वह शिव आपकी रक्षा करे।" यह है वह प्रक्रिया जिससे एक ओर नाटक की भूमि निर्मित होती है, दूसरी ओर दर्शक की मनोमय भूमि-चित्त

भूमि। फिर नाटक का आरम्भ होता है। वह नाटक जो रूपक का एक विशेष प्रकार है।

रूपक पर आने से पहले हम देख लें कि 'रंग' क्या है, जो 'भूमि' से जुड़ा है। उस रंग का तात्विक अर्थ क्या है ? रंग-भवन, भूमि, श्रोतृवर्ग, अभिनय, प्रस्तुतीकरण और परस्पर सबके बीच रागबद्धता, रागमय चित्र-वृत्ति की सम्पूर्णता के अर्थ में है—'अहोरागबद्धचित्रवृत्तिलिखितं इव सर्वतो रंगः' (अभिज्ञान शाकुंतलम्—१) रंग मायने वर्ण और वर्ण मायने रंग करना। वर्ण यानी रंग का एक विशेष अर्थ और भी है, जिसका सम्बन्ध अभिनय से है—चारों प्रकार के अभिनय—आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक जो अक्षरों, अर्थ समूहों (व्यक्ति और व्यक्ति के सम्मूहन, सम्बन्धों, गतियों) में अपने आपको व्यक्त करता है और जिससे अंततः छन्द और रस बनते हैं (वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि) और जो इन सबके कर्ता हैं, मंगलों को करने वाली सरस्वती और गणेश, उनकी वंदना करता हूँ (मंगलानां च कर्तारौ वंदे वाणीविनायकौ) क्यों करता हूँ ये वन्दना ? इस रंग की अनिवार्यता क्यों है ? क्योंकि बिना श्रद्धा और विश्वास के रंग में रँगे हुए अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को मैं नहीं देख सकता। रंग-संदर्भ में ईश्वर मायने-बोध-अभिज्ञान-आनन्द। अंतः रंग से अभिप्राय है—एक सम्पूर्ण उल्लास और आंतरिक उत्साह। पूरा रंग ही रूपक है। पूर्ण रंग जब अपना रूप धारण कर अभिव्यक्त होता है, प्रकट होता है—तो वही है रूपक और रूपक से आया है नाटक। इसके विपरीत 'ड्रामा' बिल्कुल दूसरी दिशा से आया है।

रंग, भूमि और रूपक इसका पूरा सत्य तुलसीदास ने एक चौपायी में प्रतिष्ठित कर रखा है :

रंगभूमि जब सिय पगु धारी।
देखि रूप मोहे नर नारी॥

रूप—वही रूपक है। रूपक सम्पूर्ण है। रंग पूरा है। भूमि रंग से पूरी है। चारों ओर सुन्दरता, लालित्य और उत्साह के बीच शिव-धनुषं



का नाटक (रूपक) रचा हुआ है। रचा जा रहा है। एक ही चित्तवृत्ति रूपी दर्शक हैं, क्योंकि वही भूमिजा है, भूमिजा किससे ब्याही जाती है, यही नाटक का मूल विषय है, यही जिज्ञासा-केन्द्र है। अतः रंगभूमि पर उनके प्रवेश से सब मोहे हुए उल्लसित है। धनुष भंग होना—करना यही भू है और उस रंगभूमि पर वह नाटक—वह रूपक हो रहा है, जहाँ धनुष तोड़कर एक नये युग का सूत्रपात होना है। जहाँ तोड़कर ही महा-मिलन—विवाह सम्भव है। जहाँ ऐसा धनुष यज्ञ रूपक कारण बन रहा है—राम और जानकी के मिलन का पुरुष-प्रकृति के महामिलन का। तोड़कर प्रकट होना, तोड़कर मिलना, उदित होना, यही है हमारी रंगभूमि का रूपक, रूपक का नाटक।

इसके विपरीत ड्रामा और थियेटर में सिर्फ टूटना और तोड़ना है, यहाँ मिलने का प्रश्न ही नहीं है। मिलन का भाव ड्रामा-थियेटर में ही नहीं है। वहाँ वे स्वयं टूट कर गिरे हैं—जमीन पर। वे सदा घायल रहे हैं। पाप-भाव से संत्रस्त हैं। उनके बोध में केवल अपराध और मृत्यु बोध है।

यह कल्पना करना हमारे लिए कठिन है कि कोई ऐसा भी समय और समाज हो सकता है जिसमें अपना रंग न हो ? कला और साहित्य न हो, हालाँकि यही प्रयत्न साम्राज्यवादी फिर आधुनिकतावादी पश्चिम ने भारत भूमि पर किया। उसी प्रक्रिया में उसने पहले रंग को भूमि से काटा। हम कटे अपने आप से। फिर उसने 'ड्रामा' और थियेटर (मंच) के प्रभाव से नहीं, बल्कि उसकी अधीनता में हमारे परिप्रेक्ष्य और बोध को लगातार छोटा, छिछला किया। फिर संचार-माध्यमों के प्रभाव से उस ड्रामा, उस रंगमंच (थियेटर) को उत्तरोत्तर अप्रासंगिक कर दिया। यही उनका औपनिवेशिक ड्रामा था।

हमें अपनी रंगभूमि पर जाना है। हमें अपनी उस मनोदशा को पाना है; ग्रहण करना है, जिसमें हम अपने 'स्व', अपनी भूमि की भूमिका से प्रतिबद्ध हो सकें। इसका यह अर्थ बिल्कुल नहीं कि हम पीछे मुड़ जायें

और प्राचीनता में चले जायँ। हम अपनी जिस रंगभूमि को अपनाने जा रहे हैं, वही तो हमारा 'स्व' है। यही उसके ग्राह्य या अग्राह्य होने की कसौटी है। अब सबसे पहले हमारी अनुसंधान वृत्ति का काम है कि वह अपनी 'रंगभूमि' कसौटी का निरन्तर उपयोग करे और हमारे द्वारा जिसका अनुकरण या अनुसरण किया जा रहा है, उसमें से केवल उन्हीं तत्वों को स्वीकार करें हम, जो हमारी 'भूमि' हमारे 'रंग' के लिए अनिवार्य है। आज हमारी स्थिति भूमिहीन की है। हम अपनी भूमि से बाकायदा उखाड़े गए हैं। उस भूमि की स्मृति तक दफनाई जाने की कोशिश अब भी चल रही है। ऐसी ही विकट स्थिति में हमारी रंग-स्मृति जग रही है कि रंगकर्म अपनी संस्कृति, अपने 'स्व' के अधीन ही संभव है।

आदमी भूमिहीन तभी होता है जब वह अपनी संस्कृति (स्वधर्म) से उखाड़ा जाता है, या उखड़ता है। माडर्न थियेटर ने उसी धरातल पर हमें उच्छिन्न किया है। उन्नीस सौ सैंतालीस तक यह प्रक्रिया पूरी कर उन्होंने हमें स्वतन्त्र नहीं, आजाद करके यह कहा कि भारतवर्ष में अब अपना कुछ भी नहीं रहा। यह अविकसित है। हम इसे विकसित यानी आधुनिक करेंगे। मतलब वे देंगे हमें अपनी भूमि। कैसी भयंकर बात है। जब तक अपनी संस्कृति थी, हमें ऐसी बात कौन कह सकता था? जब तक अपनी संस्कृति थी, तब तक सबका जीवन अपने रंग में परिव्याप्त था। रंगभूमि का प्रत्येक अंग, अपने नाट्य का प्रत्येक पक्ष एक दूसरे में परिव्याप्त था, जैसे माटी में रंग। कहीं कोई बाधा नहीं थी, क्योंकि संस्कृति अबाध थी। नाटककार, अभिनेता, जिस शब्द, जिस प्रतीक, चिह्न, मुद्रा, लय, छन्द, जिस भाव और विचार को अपनी कला में प्रयुक्त करता था, उसे दर्शक समाज (नर-नारी) सहज ही ग्रहण कर लेता था। आज जब अपनी कोई संस्कृति नहीं, तब नाटक लिखना, करना कितना संकटपूर्ण काम है। जो कभी आनन्दमय कर्म था, पर्व था वही इतना संकटपूर्ण हो गया। नाटककार कहीं, अभिनेता कहीं, दर्शक कहीं, सबकी



भाषा में इतना अन्तर। क्योंकि अपनी भूमि नहीं, जहाँ हम समानधर्मा होकर एकजुट होकर खड़े हो सकें।

भूमि माने अपना धर्म। रंग माने अपनी भूमि। हमारी यह भूमि हमसे कोई नहीं छीन सकता। हमें इसकी स्मृति है। भूमि का एक सनातन रूपक हमारे दर्शन में है। हमारे अस्तित्व की स्थिति 'ऊर्ध्वमूलमधः शाखा' के रूपक में सुरक्षित है, जिसे पोषण देने वाली 'भूमि' और जिसे विस्तार का अवकाश देने वाला आकाश नीचे है। यही हमारी रंगभूमि का सनातन, अबाध रूपक-नाटक है।

८ जनवरी, १९८६
नई दिल्ली

**—लक्ष्मीनारायण लाल**

पात्र

श्रीमती सुधा सिन्हा
एस० पी० सिन्हा
अरविंद
बीजो
पूनम
शोभा
मिस नीलिमा देशपांडे
श्रीखंडे
रोशनी तथा
बाइसकोप वाले एक स्त्री एक पुरुष

## पहला अंक

[मध्य-वर्ग-आय के लोगों के निवास का पिछवाड़ा। अलग-अलग, पर एक-दूसरे से मिले हुए तीन दरवाजे दिख रहे हैं। सामने से देखने पर क्रमशः बायें से दायें पूनम-शोभा, श्रीमती सुधा सिन्हा, देश-पांडे के दरवाजे दिख रहे हैं। हर दरवाजे के साथ छोटा-सा बरामदा। इन सबके सामने खुला हुआ सहन।

इस भूमि पर पर्दा उठने के साथ पृष्ठ-भूमि से संगीत उठने लगा है। प्रकाश आने के साथ गाता हुआ एक पुरुष और नाचती हुई एक स्त्री का प्रवेश]

**दोनों :** लोक लोकाय नमोनमः।
दर्शक वृन्दाय नमोनमः॥

**पुरुष :** पहले हाथ जोड़ निवेदन
फिर खेल खेल खेल।

**स्त्री :** क्या ?

**दोनों :** दिल्ली वाले खूब
मंडी हाउस वाले खूब।

**पुरुष** : हम अपने गाँव गाँवन में
बाइसकोप दिखाते
नाचते गाते
खेला दिखाते
रोजी रोटी कमाते ।

**स्त्री** : ये दिल्ली थेटर वाले गये
मंडी हाउस वाले गये
हमें लालच के जाल में
बंदर भालू की तरह फाँस लाये ।

**दोनों** : दिल्ली शहर में इधर-उधर नचाया
विदेश भिजवाने का नमक चटवाया
इस बीच हमारी सारी कमाई गटक गए
फिर हमको यहाँ से "गेट आउट" कराया ।

[नर्तन]

ये दिल्ली वाले खूब
ये थेटर वाले खूब
दिल्ली दिल्ली वाले खूब ।

**पुरुष** : अब हम अपने स्थान वापस कैसे जायँ ?
अब न घर के न घाट के
न थेटर के न होटल के न बँगलों के न बाट के ।

**स्त्री** : हमारा अपना बाइसकोप लुट गया ।
जो था यहीं थेटर-मार्केट में छुट गया ।

**पुरुष** : तो तो तो
तो तो तो

**स्त्री** : हमने सोचा ।

**पुरुष** : तो तो तो ।



**स्त्री** : हमने देखा ।

**पुरुष** : तो तो तो ।

**स्त्री** : हम फिर जिंदा बाइसकोप क्यूँ न दिखायें ।

**दोनों** : हाँ हाँ हाँ
बाइसकोप दिखायें ।

**पुरुष** : तो तो तो तो तैयार ?

**स्त्री** : हाँ हाँ यार ।

[गायन-नृत्य]

अपन कानों में सोने की बालियाँ
देखो देखो हँसन वाली छोरियाँ ।
अपन आँखों में सुर्मेदानियाँ
देखो देखो हँसन वाली छोरियाँ ।

[इनके प्रस्थान से पहले अपने-अपने दरवाजे से पूनम, शोभा, नीलिमा इन्हें देखकर आनन्द ले रही थीं । इनके जाने के साथ ही ये उसी संगीत पर नाच पड़ती हैं । उस संगीत से आकृष्ट हो अरविंद, मिस्टर सिन्हा, श्रीखंडे आदि दौड़े आते हैं । और मंत्रमुग्ध हैं । गुस्से में मिसेज सिन्हा का आना । संगीत का टूटना, पूनम और शोभा के अलावा बाकी सबका भागना । इस पर पूनम और शोभा का हँस पड़ना]

**सुधा** : इतना शोर यहाँ कि साँस लेना मुश्किल कर दिया । कोई "प्राइवेसी" नहीं । हर वक्त इस पीपल के पेड़

पर चिड़ियाँ चाँय-चाँय करती रहती हैं···।

**पूनम-शोभा** : नीचे हम लड़कियाँ।

**सुधा** : हुअँ ! ऐसे ऐरे गैरे के मुँह नहीं लगना चाहती। (अरविंद से) यहाँ क्यों खड़े हो ? जाओ अंदर पढ़ाई करो। उधर क्या देख रहे हो ? अंदर जाते हो या नहीं ?

[पूनम-शोभा का अन्दर जाना]

**अरविंद** : ममी आपको क्या हो गया है ? मैं कोई बच्चा नहीं।

**सुधा** : ये तुम्हारे पढ़ने का समय है।

**अरविंद** : मुझे यहाँ खड़ा रहना अच्छा लगता है।

**सुधा** : अच्छा लगता है (खींचती हुई) चलो अंदर।

[अन्दर से सुधा का अरविंद पर गुस्सा करने की आवाज। मिस नीलिमा देशपांडे का भीतर से निकलना। सुधा की दीवार के परे झाँकना। फिर सुधा के दरवाजे पर आकर भीतर का दृश्य देखने का प्रयत्न। भीतर से बाहर किताब कापी, कलम का फेंका जाना। अन्त में एक चाकू। चाकू को देखकर नीलिमा का डरना। भीतर से श्रीखंडे का आना। डरी हुई नीलू को देखते ही]

**श्रीखंडे** : नीलू। नीलू।

**नीलिमा** : ओ ओ ओ चाकू।

**श्रीखंडे** : का होई गया। चाकू माँ का है ?



[उठा लेना]

**नीलिमा** : मामा। खबरदार। खून····।

**श्रीखंडे** : क्या बोलता, कैइसा खून।

**नीलिमा** : भीतर···भीतर खून।

[दोनों का सुधा के दरवाजे पर जैसे किसी रहस्य को जानने के लिए एकटक देखना। भीतर से मिस्टर सिन्हा का आना]

**सिन्हा** : क्या है ?

[वह स्वयं उन्हीं के साथ देखने लगते हैं। भीतर से पूनम और शोभा का वालीबाल की गेंद खेलते हुए निकलना। मिसेज सिन्हा के दरवाजे का दृश्य देखकर हँस पड़ना]

**सिन्हा** : क्या ? कौन ?

**श्रीखंडे** : ऐं अँ।

**सिन्हा** : ऐं।

[श्रीखंडे का नीलिमा को संकेत। उसका दौड़कर अपने बरामदे में जाना और पतली होने की "इक्सरसाईज" करने लगना]

**श्रीखंडे** : हें हें हें हें "स्लिमिंग डाइटिंग ब्यूटीइंग"

**सिन्हा** : हुँअ। यहाँ क्या देख रहे थे ?

**श्रीखंडे** : कुछ नहीं कुछ नहीं।

[भागकर एक ओर]

**सिन्हा** : आखिर बात क्या है ?

**श्रीखंडे** : बता दूँ ?

**नीलिमा** : नहीं।

**सिन्हा** : क्या नहीं ?

**श्रीखंडे** : चाकू।

[सिन्हा का चाकू उठाना। नीलिमा-श्रीखंडे का भयभीत देखना ]

**सिन्हा** : फल काटने का हमारा चाकू यहाँ कैसे आया ?

[चाकू को अपने झोले में रखकर जाना]

**श्रीखंडे** : सिन्हा साहब सब्जी लेने गया। अब क्या होगा ?

[मामा-भांजी के बीच संकेत भाषा में बातें]

**नीलिमा** : चाकू पुलिस के हवाले कर देना चाहिए था।

**श्रीखंडे** : करक्ट।

**नीलिमा** : मेरा कैमरा लाइए। यहाँ का फोटो लेकर...। अखबार में लिखने के लिए...।

[उधर से मामा का कैमरा लाना। इधर से मिसेज सिन्हा का निकलना]

**सुधा** : आप लोगों ने यहाँ क्या तमाशा लगा रखा है ? अपना कोई काम-धाम नहीं ?

[इस बीच पूनम और शोभा गेंद खेलती हुई]



**पूनम** : आज सबकी छुट्टी है।

**अर्विंद** : (आकर) मेरी भी छुट्टी।

**सुधा** : तुम्हें आई० ए० एस० कम्पटीशन में बैठना है।

**अर्विंद** : यहीं बैठकर पढ़ूँगा।

[पूनम और सुधा गेंद से खेलती हुई सामने से गुजरती हैं। अर्विंद उस खेल में शामिल। "नहीं नहीं" चिल्लाती-दौड़ती हुई सुधा का अपने पुत्र को पकड़ने की कोशिश। हारकर श्रीखंडे को पुकारना। श्रीखंडे की कोशिश। पर अर्विंद का उनके साथ निकल जाना]

**सुधा** : हाय। अब क्या होगा ? इस वक्त मिस्टर सिन्हा भी घर पर नहीं। श्रीखंडे जरा तुम...प्लीज।

[जाना श्रीखंडे का]

**नीलिमा** : मिसेज सिन्हा, आप इस कदर घबड़ाई क्यों रहती हैं ? मेरा मतलब 'नरवस'....।

**सुधा** : आपको पता है, इसका क्या "रिजल्ट" हो सकता हैं ? ओ गाड। अर्विंद आई० ए० एस० के कम्पटीशन में...।

**नीलिमा** : अर्विंद बच्चा नहीं।

**सुधा** : अर्विंद बिल्कुल बच्चा है, सीधा-सादा, अपने डैडी की तरह। 'यू नो' वह कविता लिखता। अंग्रेजी में। उसकी कविता अभी इंगलैंड की मैगजीन में छपी है। (रुककर) ये 'फेमिली' हमारे लिए बहुत बड़ा "डिस्टरबेंस" है। यहाँ का सारा माहौल, ये

पीपल का पेड़, मेरी "प्राइवेसी" को "डिस्टर्ब" करता है। "यू नो"।

**नीलिमा** : आप इतनी "प्राइवेसी" क्यों रखती हैं ?

**सुधा** : वो जरूरी है।

**नीलिमा** : कोई रहस्य जरूर है।

**सुधा** : क्या कहा ?

**नीलिमा** : सोच रही थी।

**सुधा** : आप अखबार में काम करती हैं, आपका सोच-विचार से क्या ताल्लुक।

**नीलिमा** : "मारविड"।

**सुधा** : "शटअप"।

[अरविंद को रस्सी से बाँधे हुए श्रीखंडे का ले आना]

**सुधा** : ये क्या किया ?

[अरविंद की रस्सी खोलना]

**सुधा** : इस तरह क्यों लाए ? लोगों को कोई अकल नहीं ?

**अरविंद** : ममी, मैं आना नहीं चाह रहा था। मैं उनके साथ खेल रहा था। (रुककर) कोई मुझे बाँधकर कहीं अदृश्य लोक में ले जाए, मुझे बहुत अच्छा लगता है।

**सुधा** : ओह गाड।

**श्रीखंडे** : रस्सी ढूंढ़कर खुद दी, कहा—मैं ऐसे नहीं जाता। कोई मुझे बाँधकर ले जाए...। (रुककर) इसे तो इस पीपल के पेड़ से बाँध दीजिए।

**अरविंद** : बिल्कुल ठीक। मैं यहीं चाहता हूँ। मेरी किताबें यहीं ला दो। प्लीज ममी।

**सुधा** : सीधे से घर में चलते हो कि नहीं ?

**अरविंद** : ममी "यू नो" मैं सीधे कहाँ चलता हूँ।

[टेढ़े-मेढ़े चलने लगना। सुधा का उसे खींचकर अंदर ले जाना]

**नीलिमा** : ओ...ये रहस्य है।

[श्रीखंडे से संकेत-वार्ता]

**श्रीखंडे** : अपन को कुछ समझ में नहीं आता।

**नीलिमा** : मामा, तुम बुद्धू हो बुद्धू। वो घर नहीं, कैदखाना। कैदखाने में चाकू। "प्राइवेसी, सीक्रेसी"... मतलब क्या है ? देखो ये पीपल का पेड़। इस पर बैठती हुई चिड़ियों की भी नजर इनके फ्लैट में न जाए—आखिर कोई गहरा रहस्य तो होगा।

[तेजी से सुधा का निकलना]

**सुधा** : ये पेड़। क्या कहा ?

**श्रीखंडे** : पेड़...वृक्ष...ट्री...। दरख्त।

**सुधा** : नीलिमा, अपने मामा को समझाओ, मेरे मुँह न लगे।

**श्रीखंडे** : आंटी जी, कहीं मेरी नौकरी लगा दे।

**सुधा** : किसी की शादी करा दूँ, किसी को नौकरी लगा दूँ, "आइ एम नाट मिडिल क्लास "इडियट"...।

**श्रीखंडे** : ओ फस्ट क्लास।

**नीलिमा** : मामा।

[श्रीखंडे का इशारे में नीलिमा से "आंटी की समझ में नहीं आया"]

**सुधा** : पेड़ के यहाँ होने का कोई मतलब नहीं। "न्यू-सेंस।"

**श्रीखंडे** : ओ, तभी इस बस्ती में कोई बाप-दादा नहीं।

**नीलिमा** : मामा, शीशा लाओ मेरा।

[जाना]

**सुधा** : अब देखिये पिछड़ेपन की हद—बीजी कहती है—ये दरख्त मेरे धर्म की पुस्तक और इसके पत्ते उस पुस्तक के पन्ने हैं।

[बीजी का निकलना]

**सुधा** : इसका एक-एक पत्ता, एक-एक रेशा...मनहूस।

**बीजी** : इसे कटवाकर अपनी नुमाइश करवानी चाहती हो। अभी कम नुमाइश है ?

[अंदर जाना बीजी का, श्रीखंडे का शीशा ले आना]

**सुधा** : तुम्हारी "फीगर" ठीक हो रही है।

**नीलिमा** : आप जैसी कहाँ ?

**सुधा** : खाने में मूली गाजर ज्यादे खाया करो। सिन्हा साहब तो...।

**श्रीखंडे** : नीला सागर। मूली गाजर।

**सुधा** : कैसा बेसुरा गाता है।

**श्रीखंडे** : वजह यही पीपल का पेड़।

**नीलिमा** : (शीशे में अपनी फीगर देखती हुई) मेरा ख्याल है कभी ये पेड़ जवान और खूबसूरत था।

**सुधा** : अब इसे कटाकर ही दम लूँगी।

**नीलिमा** : देखो, किस कदर कटकटाती रहती है।

**श्रीखंडे** : ये तो इनका गुण है।

[पृष्ठभूमि में पूनम-शोभा की हँसी, जिसे सुनते ही अरविंद का बाहर आ जाना। बीजी के साथ गेंद से खेलती-गाती हुई दोनों लड़कियों का प्रवेश]

पीपल के पत्ते पै
फिसल रही रोशनी।
चमक रही दमक रही
मचल रही दमक रही
मचल रही रोशनी।
दरवज्जे दीवारों
कूड़ा कबाड़ों
अगवारे पिछवारे
नाच रही कूद रही
उछल रही रोशनी।
पीपल के पत्तों पै
फिसल रही रोशनी।

**सुधा** : देख लीजिए इनके मैनर्स। हर वक्त खेल-कूद गाना-बजाना, शोर-शराबा। न काम न धाम। पता नहीं क्या पढ़ती हैं ?

**बीजी** : पढ़ने में फस्ट क्लास हैं जी। शुरु से ही स्कालरशिप पाती हैं।

**अरविंद** : खेल कूद में भी अब्वल, संगीत में फाइन आर्ट्स में... ।

**सुधा** : यू शट अप । अंदर जाओ ।

[अन्दर जाना]

**सुधा** : इसे कहते हैं "डिस्पिलिन" ।

**नीलिमा** : कैदखाना ।

**सुधा** : क्या ?

**नीलिमा** : हत्या । मरडर ।

**सुधा** : 'ह्वाट' ?

[नीलिमा का अंदर जाना, लड़कियों का हँसना]

**सुधा** : "डोंट लाफ" ।

**पूनम** : क्या करें । आप लोगों को देखकर हमें...।

**बीजी** : चुप । अपने बड़ों से ऐसे नहीं बोलते ।

**शोभा** : शुरू से बड़ा माना, तभी इन्होंने हमें छोटा समझ लिया ।

**पूनम** : कहती हैं, हम पंजाबी हैं ।

**शोभा** : एल० आई० जी० से एम० आई० जी० में आए हैं ।

**बीजी** : चलो, कहने दो बेटे ।

[तीनों का अन्दर जाना । उधर अरविंद का आना]

**सुधा** : घर में जी नहीं लगता न ?

**अरविंद** : 'इक्जैक्टली ममी' । देखो बाहर कितना सुहाना है । ऊपर चिड़ियों का गाना है । यहाँ किसी का न आना है न जाना है ।



[बैठने लगना । सुधा का विरोध]

**सुधा** : शायर नहीं अफसर बनना है ।

**अरविंद** : डियर ममी, ऐसा क्यों न बन जाऊँ ?
अपने लिए शायर, तुम्हारे लिए अफसर ।

**सुधा** : वक्त बरबाद मत करो ।

**अरविंद** : मुझे अफसरी बिल्कुल पसंद नहीं ।

**सुधा** : अपनी पसंद-नापसंद का सवाल ही नहीं उठता ।

**अरविंद** : (सहसा) ममी, ममी, वो देखो उस डाल पै, कितनी प्यारी नन्हीं चिड़िया । अहा, क्या रंग है । ओ हो गा रही है ।

[पूनम का गाते हुए आना । बाहर तार पर तौलिया फैलाकर अन्दर जाना]

**अरविंद** : ओह । उड़ गई । नहीं नहीं, पत्तों के भीतर छिप गई ।

**सुधा** : अरविंद । चलो मेरे साथ ।

**अरविंद** : देखो देखो ममी, पेड़ पै कितने कौए आ गए । अभी सब "पोर्टी" करेंगे । स्टडी में कितना "डिस्टर्ब" होता है ममी ।

**सुधा** : अन्दर चलो ।

**अरविंद** : वो सुन्दर, प्यारी चिड़िया फिर दिखाई दे रही है ।

**सुधा** : इस पेड़ को कटाकर ही दम लूँगी ।

**अरविंद** : नहीं नहीं ममी । अन्दर चलता हूँ ।

[दोनों का अंदर जाना । अपने यहाँ से श्रीखंडे का निकलना । दंड-बैठक करना। बाहर से सिन्हाजी का आना]

सिन्हा : श्रीखंडेजी, पहले मैं भी खूब दंड बैठक किया करता था।

श्रीखंडे : कुछ आपने मुझसे कहा ?

सिन्हा : क्या ?

श्रीखंडे : नीलू, वो आ गए...सिन्हा साहब।

[नीलिमा का "बाथरूम-गाउन" में गीले बालों को तौलिये से सुखाते हुए आना]

नीलिमा : जी वो चाकू ?

सिन्हा : चाकू ? कैसा चाकू ?

श्रीखंडे : काटने वाला।

सिन्हा : ओ हो सब्जी काटने वाला—झोले में है। क्यों ? क्या ? ओ आपको चाहिए ?

नीलिमा : देख लीजिए, उसमें खून लगा होगा।

सिन्हा : नहीं-नहीं ऐसे कैसे हो सकता है (झोले में से चाकू निकालकर) ये देखिए...।

[चाकू को देखते ही नीलिमा का डर से चीखकर भागना। श्रीखंडे का हनुमान चालीसा-पाठ करने लगना। सिन्हा हत-प्रभ। तभी सुधा के दरवाजे से कागज के हथगोले बाहर फेंके जाने]

श्रीखंडे : भागिए, भागिए सिन्हा जी। बचिए...बचिए।

[नीलिमा का आना]

नीलिमा : फोन...फोन...पुलिस को फोन।

सिन्हा : बात क्या है ?



नीलिमा : जैसे आपको कुछ पता ही नहीं। आपके घर के भीतर जो हो रहा है...।

सिन्हा : क्या हो रहा है ?

नीलिमा : आपको पता होना चाहिए।

सिन्हा : ऐसा क्या हो रहा है ?

नीलिमा : मर-मर 'मरडर'।

[चीखें—भीतर से सबका बाहर निकल आना]

सुधा : ओ डार्लिंग क्या बात है ? क्यों इस कदर शोर मचा रहे हो ?

सिन्हा : ये चाकू...ये चाकू...ये क्या है ? ये हथगोले, म... मरडर ?

सुधा : डार्लिंग, घबड़ाओ नहीं। अरविंद, डैडी की दवा। (अरविंद का दौड़ना) आप लोग भीड़ मत कीजिए। डार्लिंग, हिम्मत से काम लो। (अरविंद के हाथ से सिन्हा के मुँह में टेबलेट देना। सिन्हा को छींके आने लगना) अरे तूने कौन-सी दवा दे दी ? ओ गाड। ये तो 'एलर्जी' की दवा। माईगाड, इन्हें अंदर ले चलो।

[कोशिश। पर छींकें आने से डरकर सुधा का दूर भागना। अरविंद को भी परे हटने का संकेत करना]

सिन्हा : चाकू। (छींक) ये, ये, ये। मर...मर...मरडर...।

[हर छींक से लोग दूर और दूर हटते चले जा रहे हैं]

सुधा : अरविंद, डाक्टर को फोन करो। एलर्जी अटैक।
अरविंद : घर में कैसे जाऊँ ?
सुधा : पब्लिक टेलीफोन।
अरविंद : "पब्लिक डेड"।
सिन्हा : क्या कहा पब्लिक...डेड ? (छींक) क्या पब्लिक... डेड ?
अरविंद : आई एम सोरी माई पूअर डैडी।
सुधा : पूअर डैडी ? मतलब क्या ?
अरविंद : घर भर में दवाइयाँ ही दवाइयाँ—सारे "टेबलेट्स" एक जैसे। काश आप कारपोरेशन के हेल्थ डिपार्टमेंट में ज्वाइन्ट सेक्रेट्री न होते डैडी।
सिन्हा : वह लाल टेबलेट। (छींक) मेरी तकिया के नीचे।
सुधा : रुको, मैं ले आती हूँ।

[जाना, ले आकर दूर से फेंककर देना। छींक के कारण "टेबलेट" न पकड़ पाना। अंत में अरविंद का "टेबलेट" लेकर अपने हाथ से पिताजी को खिलाना]

पूनम : वाह क्या बहादुरी दिखाई है।
अरविंद : हें हें हें हें शुअ शुअ।

[सिन्हा को लेकर सुधा का अंदर जाना। पड़े हुए कागज के हथगोलों को अरविंद पैर से मारकर बाहर करने चलता है]

पूनम : ए, ये क्रिकेट-बाल।

[खेलना]



अरविंद : ऐ मेरे "नोट्स" हैं।
पूनम : कूड़ा है कूड़ा।

[क्रिकेट खेलना। खेल में सहज ही सबकी साझीदारी। गुस्से से चिल्लाती हुई सुधा का निकलना]

सुधा : आप भी नीलिमाजी, इन्हीं के साथ लड़की हो जाती हैं। और तुम श्रीखंडे...।
नीलिमा : जबान सम्हालिए, मैं लड़की नहीं तो और क्या हूँ ?
सुधा : अरविंद, चलो अंदर। अंदर चलो।
अरविंद : सिर्फ एक ओवर।
सुधा : नो।
अरविंद : अच्छा सिर्फ एक बाल।
सुधा : ये खतरनाक खेल...।
अरविंद : मैं पढ़ते-पढ़ते बिल्कुल बोर हो चुका हूँ। आज नहीं पढ़ूँगा—बिल्कुल नहीं।
सुधा : ऐसा तुम बचपन से कहते आ रहे हो।
अरविंद : अच्छा, खेलूँगा नहीं, पर खेल देखूँगा।
सुधा : ऐ, खेल बंद करो।
शोभा : क्यों ?

[खेल, छक्का मारना पूनम का। अरविंद की प्रसन्नता]

सुधा : आप लोग यहाँ नहीं खेल सकते।
नीलिमा : क्यों नहीं खेल सकते ?
श्रीखंडे : ये सार्वजनिक स्थान है।

सुधा : बाल से मेरी खिड़की का शीशा टूट गया तो ?

पूनम : कागज का बाल है मैडम, आपकी नजर लग गयी तो ?

शोभा : बल्ला हमारा हाथ है, मोच आ गई तो ?

अरविंद : (सहसा) हम खिलाड़ी साथ हैं—एम० आई० जी० मैदान में ।

[खेल के दृश्य से सबका प्रस्थान । पृष्ठ-भूमि से जमादारिन रोशनी की आवाज]

आवाज : जब्बान सम्भाल के बोलो । किसी का कोई डर नहीं हैगा ।

[अपने भीतर से कूड़ा की बाल्टी लिए श्रीखंडे का निकलना । उधर बीजी का दिखना]

श्रीखंडे : क्या बड़बड़ा रही है रे ।

रोशनी : बोत रे बे किया तो मूपै झाड़ू चला दूँगी, हाँ ।

बीजी : राम राम रोशनी ।

रोशनी : राम राम बीजी ।

बीजी : ये लो अपनी माहवारी ।

रोशनी : अरें ये देक्खो, अभी तो मैंने आपका काम भी शुरू नहीं किया । भगवान आपको अच्छे रक्खे । बीजी, देक्खो, आप सें क्या छिपाउँ । ई दोनों फ्लैटवालियाँ तुम्हारे खिलाफ भड़कावें । और ये श्रीखंडा-मुरचंडा मुझसे तू तप्पड़ करें ।

श्रीखंडे : अरे भाई रोशनी, एक बार कहा सुनी माफ करो अपन । ऐसा है—मैं आपको मैडम कहूँ, बहनजी कहूँ, नाम लूँ, का कहूँ ?



रोशनी : अपन मुँह बंद रक्खो चपड़कनाती । कूड़ा बाल्टी में डाल दो, हाँ, नहीं तो ।

[बाल्टी का कूड़ा रोशनी के कूड़ेदान में डालकर अंदर भागना]

रोशनी : आपके खिलाफ दोनों एक इन्ने कही, नई आई हुई से बारह रुपये महीने लो । खुद देवै आठ रुपये । वाह रे जमाना । झुठ का बोलूं बीजी, मेरी भी खोपड़ी माँ बात बैठ गई । चलो आज आपका उद्-घाटन कर दूँ ।

बीजी : सुखी रहो ।

रोशनी : कौंड़ सुखी रहन दे । सुख है भी नहीं कहीं । अब यहीं की बात लो । ई पीपल का दरख्त बेचारा किसी से क्या ले रहा ? उल्टे सब कूँ दे रहा छाया, ऊ का कहें ।...का कहें, अंग्रेजी में ?

बीजी : आक्सीजन ।

रोशनी : और इसका उल्टा ?

बीजी : नाइट्रोजन ।

रोशनी : अब पूछो इन एम० आई० जी० वालों और वालियों से, सबकी गंदगी पेड़ लेवे, अपनी सुगंधी दैवे—फिर ? जड़ से काट देव । इन्हें छाया नई माया चाहिए । देखो, कैसा हरा-भरा पेड़ है । अरे पच्छी दरख्त पै बैठेंगे तो टट्टी पेशाब करेंगे ही । सब करते हैं कि नहीं ? तो ? पेड़-पौधे "पलूसन" करते हैं, खुद जो इतनी "पलूसन" करती हैं, हरदम

खाना, हरदम पाखाना, हरदम गुस्सा, हरदम चक्कर-चक्कर बोली। अपना कूड़ा-कचरा दूसरे के सिर मढ़ो, दोष लगाओ रोशनी पे। (झाड़ू लगाती हुई) रोशनी कामचोर, रोशनी इनफेक्शन लाती।

**बीजी** : रोशनी मुँह बंद।

**रोशनी** : ठीक कहती। बोलने से मुँह में धूल जाती है। मगर अपनी आदत से मजबूर रोशनी भी तो है। हर बखत बोले सुसरी।

[उन तीनों दरवाजों के सामने क्रमशः रोशनी का जाना]

**रोशनी** : जे तो मिसेज सिन्हा बौम्प मारती है—रोशनी तू आती क्यों नहीं ? बिना काम किए तनखाह लेना जानती है। अब बोल्लौ, रोशनी साढ़े आठ बजै यहाँ कैसे पहुँचे ?

[मिसेज सिन्हा का निकलना]

**सुधा** : क्या है ? क्यों इतना शोर मचाती है ?

**रोशनी** : अब सुनो, मैं शोर मचाती। ये खामोशी के गात गुनगुनाती।

**सुधा** : ज्यादा बड़बड़ाने की जरूरत नहीं।

[नीलिमा का दिखना]

**रोशनी** : दो महीने की मेरी तनखाह ?

**सुधा** : जब काम नहीं तो तनखाह कैसा ?

**रोशनी** : काम कराती नहीं तो मैं क्या करूँ ? हर बात में



तो छुआछूत रहता है। पता नहीं एक बच्चा कैसे जनम दिया।

**सुधा** : दिस इज लिमिट। गेट आउट। आई से गेट आउट।

[नीलिमा की हँसी फूटती है]

**रोशनी** : लो, हायदई। इनको भी हँसी आई गयी।

**नीलिमा** : क्या कहा रोशनी, बच्चा कैसे जना ? बड़ा हाई-जिनिक सवाल है।

**सुधा** : मैंने तुम सब का पानी न बन्द कर दिया तो मेरा नाम नहीं। यू नो, माई कजिन फादर-इन-ला इन चीफ इंजीनियर दिल्ली वाटर सप्लाई।

**रोशनी** : अरे शांति से बोला करो मेमसाहब। बड़ी आई है। चार अच्छर अंग्रेजी का पढ़ि लिया है, अपड़े को लाट साहब समझती है। सबको हड़काती हैं।

**सुधा** : क्या बड़बड़ कर रही है ?

**रोशनी** : अपनी खोपड़ी। मुझसे जियादा मत्थी मती मारो। आपुस में गुत्थमगुत्था करो।

**सुधा** : मैं तुम्हारी रिपोर्ट करूँगी। कामचोर बातूनी।

**रोशनी** : किर्यूं हलांकान करती हो मेमसाहब, डी० डी० ए० इंजीनियर हरामजादे को पूरे तीन हजार कैश देकर खरीदा पूरा मोहल्ला।

**सुधा** : बस, मेरा आज का कोटा पूरा हो गया।

**रोशनी** : क्या ?

**सुधा** : मेरा उसूल है—इससे ज्यादा एक दिन में गुस्सा नहीं करती।

**रोशनी** : कमाल है। वाह, देख ले रोशनी। कैसे-कैसे बंदे-

बंदियाँ हैं तेरे राज में। झगड़े लड़ाई में भी अपने उसूलों का ख्याल रखना, मेमसाहब का तो कमाल है। हाय अल्ला खैर सल्ला।

**नीलिमा** : 'शी इज ए हिपोक्रेट।'

[अन्दर जाना]

**रोशनी** : चल री रोशनी, ई सब तेरी समझ से बाहर की चीजें हैं। (जाती-जाती सहसा देखकर) किन्ने कूड़ा गेरा है? बताओ। अब कोई नहीं बोल्लेगा। जरूर मिसेज सिन्हा का काम है। बीजी, औ बीजी।

[शोभा का आना]

**शोभा** : क्या है?

**रोशनी** : इधर किन्ने कूड़ा गेरा।

**शोभा** : उठा लूँगी अगर आप नहीं उठाओगी।

**रोशनी** : आपने मुझको "आप" कहा—थैंक्यू।

[कूड़ा बाल्टी में उठाकर जाना। धीरे-धीरे प्रकाश का जाना। प्रकाश आने के साथ पृष्ठभूमि से वही बाइस्कोप संगीत। उनका गाते नृत्य करते हुए आना]

## दूसरा अंक

**स्त्री-पुरुष** : देखा देखा बाइसकोप
देखा देखा बाइसकोप
कसरत करती गुड़िया देखी।
खट्टी-मिट्ठी पुड़ियाँ देखी॥
क्रिकेट खेलती लड़की देखी
झाँक झकेइया औरत देखी
गुस्सा करती मैडम देखी
हँसने वाली लड़की देखी।
खुली-खुली एक खिड़की देखी।

[पीछे एक दीवार खड़ी की जा रही है]

उठती हुई दीवारें देखीं
चोरी करती आँखें देखीं
भोली-भाली आँखें देखीं
माँ से डरा बेचारा देखा।
खिड़की परे नजारा देखा।

[तर्ज बदल]

पीपल की छाँव में, कहीं कुछ हुआ है।
देखो आँखों ने आँखों को छुआ है।



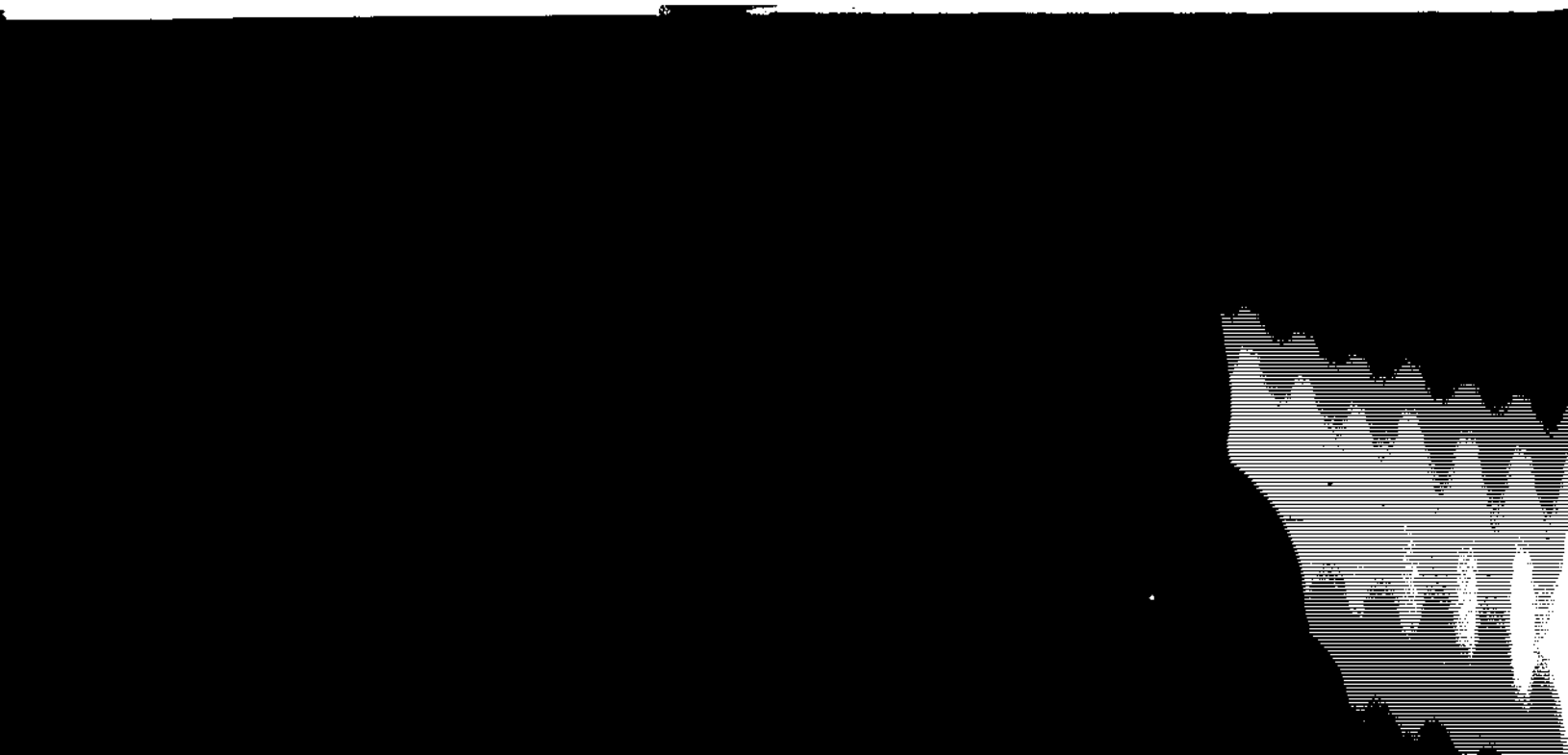

[गाते-नृत्य करते हुए जाना। नई पार्टिशन दीवार—अपनी तरफ से अरविंद, उस दीवार के माध्यम से उस पार निःशब्द कुछ बातें कर रहा है। श्रीखंडे का आना। देखना]

**श्रीखंडे** : उधर भी कोई सुनने वाला है ? नाहीं है। ऐ, ममी आएगी, डाँट पिलाएगी। जब तक पढ़ाई, इन फजूल चीजों की मनाई। अपन को लाइफ देखो न भाई। इसी चक्कर में न पढ़ाई पूरी न शादी न नौकरी।

**अरविंद** : शी S S S।

[दीवार के परे झाँकना। बातें करना]

**श्रीखंडे** : इधर से आके बातें कर लो न।

**अरविंद** : (चुप रहने का इशारा)

**श्रीखंडे** : अरे, जो बात तुम सोच रहे हो न, वो यहाँ "पासिबिल" नहीं। पढ़ाई करो जाके।

**अरविंद** : तू भी मेरी ममी है ?...मेरी समझ में नहीं आता कि उस पढ़ाई से मेरे इस, मेरे इस...।

**श्रीखंडे** : इएक...।

**अरविंद** : हाँ हाँ हाँ जो भी कहो, पर ये मेरा अपना है। ये मेरा "जैनुइन" है। बाकी सब नकली। आखिर मैं इंसान हूँ यार, किताब कापी कलम पेंसिल नहीं।

**श्रीखंडे** : हाथ मिलाओ, ये बात हुई न। मगर हाँ, ममी से छिपकर यार।

**अरविंद** : छोड़ो यार, उसी के खिलाफ तो मेरा विद्रोह है।



**श्रीखंडे** : मगर यार, यहाँ तो विद्रोह का कोई "एटमास्फियर" ही नहीं है। वह पंजाबी, तुम बिहारी, हम मराठी, वे बंगाली, वे मद्रासी, वे उड़िया...।

**अरविंद** : तुम इंसान नहीं, पालीटीशियन हो। हट जाओ। मेरे रास्ते पै न आना।

**श्रीखंडे** : यार तुम तो बड़े हिम्मत वाले निकले। कमाल है। मैं तुम्हारा शागिर्द होना चाहता हूँ गुरू।

**अरविंद** : जब वह मेरे दिल और दिमाग में छा गई तो उन सूखी-सड़ी गली किताबों में अपना सर क्यों खपाऊँ ?

**श्रीखंडे** : अरविंद, यू आर ग्रेट। काश इससे फिफ्टी पर्सेंट कम ही हिम्मत मुझमें होती...मुझे नौकरी मिल जाती, मेरी भांजी नीलिमा की शादी हो जाती। और शोभा...वही शोभा...उसकी बहन मुझे भी अच्छी लगने लगती।

[बास्केट बाल-अभ्यास करती गाती हुई पूनम और शोभा गाती हुई निकलती हैं]

हम पंजाबी
वे हिन्दुस्तानी।

**अरविंद** : हिन्दुस्तानी नहीं बिहारी।

**सब** : एक बिहारी
एक बंगाली
एक मराठी
एक गुजराती

**श्रीखंडे** : वे साउथ इंडियन।

**अरविंद** : वे नार्थ इंडियन।

**सब** : उत्तर दक्खिन
पूरब पश्चिम
दक्खिन उत्तर
पश्चिम पूरब

**पूनम** : तो तो तो तो
हिन्दुस्तान कहाँ है ?

**अरविंद** : इन दीवारों में

**सब** : अगवारे पिछवाड़ों में
आँखों के इशारों में

[खेलते-गाते सबका बाहर निकलना, उधर सुधा का आना]

**सुधा** : अरविंद, अरविंद, (बीजी को देखकर) देखिए क्या कर रही हैं आपकी लड़कियाँ। मना कीजिए वरना...।

**बीजी** : उन्हें तो अब ठीक-ठीक देख पाना भी मुश्किल हो रहा है। अब वे काफी आगे निकल गए।

**सुधा** : काफी आगे निकल गए, क्या मतलब ?

**बीजी** : आप गर्ल्स स्कूल की प्रिंसिपल हो, आप जानो। दीवार लगाओ। दरवाजे बंद रखो।

**सुधा** : ओ हो, जरा धीमे बोलो।

**बीजी** : आप जैसे बोलती हैं...। अपनी पुरानी बस्ती से यहाँ ये समझकर आए कि यहाँ सुख-शांति मिलेगी, मगर...।

**सुधा** : आपको कोई प्राब्लम हो तो बताइए। मेरे "हस-बैंड" कारपोरेशन में आफीसर हैं।

**बीजी** : सारे प्राब्लम्स तो आपको हैं। नई दीवार खड़ी करनी पड़ी। पीपल का पेड़ नहीं कटने दिया। परिन्दे आपको डिस्टर्ब करते हैं। हर चीज यहाँ आपकी "प्राइवेसी" के...



[इस बीच नीलिमा देशपांडे हारमोनियम पर संगीत-अभ्यास कर रही थीं]

**सुधा** : सब दुश्मन हैं। आ आ आ...न सुर न ताल।

**नीलिमा** : बेताली हो तुम। लोमड़ी की दुम।

**सुधा** : क्या कहा ?

**नीलिमा** : तुम और तुम्हारे हसबैंड भीतर छिपकर दिन-रात क्या करते रहते हैं, हमें मालूम होना चाहिए। जो पावरफुल है, उसकी कोई "प्राइवेसी" नहीं होनी चाहिए। "प्राइवेसी" में ही "करपशन" के कीड़े पैदा होते हैं।

**सुधा** : क्या बकवास करती है।

**नीलिमा** : खासकर तुम्हें किसी तरह की "प्राइवेसी" नहीं चाहिए। स्कूल के इतने सारे बच्चों की जिन्दगी तुम्हारे हाथ में।

**सुधा** : फ्रस्टेटेड।

**नीलिमा** : अपने बेटे अरविंद को जिस तरह मार रही हो, क्या मुझे पता नहीं ? चाकू...डंडे...रस्सी...ईंटें।

**बीजी** : बस बस, बहुत हो गया जी...।

[भीतर से सिन्हाजी का आना]

**सुधा** : सुना, ये क्या बक रही है ?

[बीजी और नीलिमा का अपने-अपने घर में जाना]

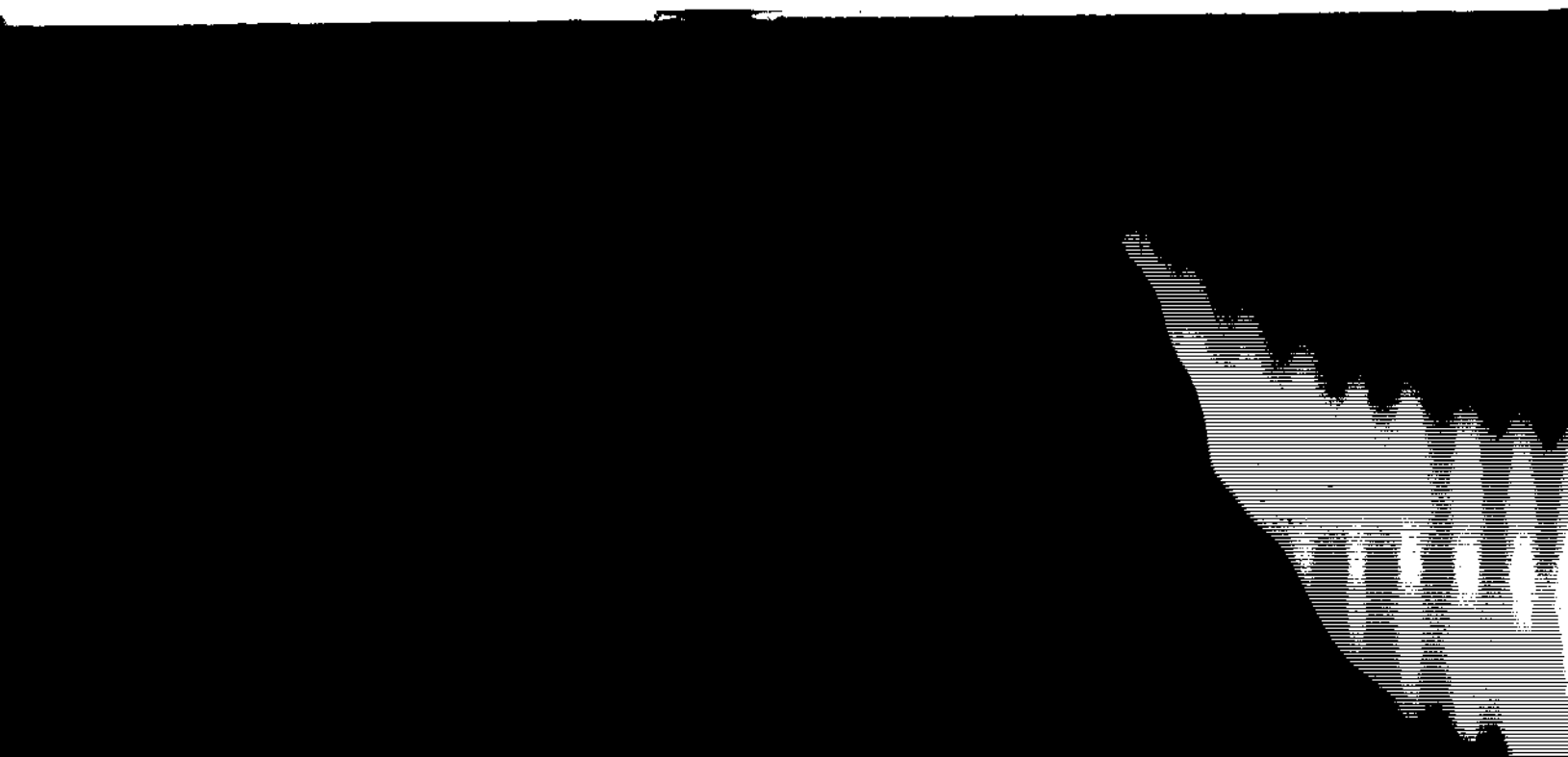

**सिन्हा** : छोड़ो भी। अन्दर चलो।

[सुधा का रो पड़ने का अभिनय]

**सिन्हा** : आई एम सारी डार्लिङ्ग। आओ चलो। प्लीज, कोई देखेगा, क्या कहेगा।

**सुधा** : अगर तुम्हें मुझसे जरा भी प्यार है तो इस नीलिमा की बच्ची को...। जाओ। बढ़ो। जाओ।

[डरना। बढ़ना। डरना]

**सुधा** : पुकारो। आवाज दो।

**सिन्हा** : मिस नीलिमा जी देशपांडे।

**सुधा** : ओ हो हो हो।

**सिन्हा** : सुनिएगा नीलिमाजी।

**नीलिमा** : (आकर) क्या है ?

**सिन्हा** : कुछ नहीं, कुछ नहीं, जरा आप इधर...।

**सुधा** : मिस्टर सिन्हा, "कम हियर"। नो नो नाट दिएर...कम हियर...।

**नीलिमा** : बेचारा।

**सुधा** : इससे पूछो—हमारे बारे में बकवास क्यों करती ? अखबार में क्यों लिखती ?

**सिन्हा** : क्यों जी, क्यों क्यों क्यों ?

**नीलिमा** : च्यों च्यों च्यों।

[इस बोली पर अभिनय होना]

**सिन्हा** : देखो न, मैं क्या करूँ।

**नीलिमा** : चुल्लूभर पानी में डूब मरिए।

**सिन्हा** : सुझाव अच्छा है।



**नीलिमा** : क्या ?

**सिन्हा** : सुझाव विचाराधीन है।

**नीलिमा** : क्या ?

**सिन्हा** : फाइल ऊपर गई है। नीचे आते ही इसे अगली मीटिंग की फाइलों में शामिल कर लिया जाएगा।

**सुधा** : मिस्टर सिन्हा।

**सिन्हा** : यस सर। जी हुजूर।

**सुधा** : एस० पी०...शारदा प्रसाद सिन्हा...।

[सिन्हा का जैसे जग जाना]

**सिन्हा** : मुझे मेरे पूरे नाम से किसने पुकारा—शारदा प्रसाद सिन्हा...शारदा प्रसाद सिन्हा वल्द परमेश्वरी प्रसाद सिन्हा...वल्द ठाकुरप्रसाद सिन्हा...वल्द...। ये कैसे हुआ सुधा। सु...धा।

**सुधा** : सुधा...ये मेरा ही नाम है ?

**सिन्हा** : हाँ हाँ हाँ शारदा प्रसाद मेरा नाम।

**सुधा** : शारदा...शारू। तुम अब तक कहाँ थे ?

**सिन्हा** : ब्याह, नौकरी, दफ्तर। यस सर।

**सुधा** : ये बोली मत बोलो। कुछ-कुछ याद आ रहा है—हमारा प्रेम हुआ था—मैं पटना की, तुम लखनऊ के। हम दोनों के पिताजी नहर विभाग के इंजीनियर।

**सिन्हा** : हाँ हाँ कुछ हुआ था।

**सुधा** : बहुत कुछ हुआ था यार।

**सिन्हा** : (घबड़ाकर) यार।

**सुधा** : यहाँ आकर मैं प्रिंसिपल, तुम अफसर। (चाकू तानकर) तूने मुझे याद क्यों नहीं दिलाया ? मुझे भूल कैसे गए।

सिन्हा : शुरू से जानती थी मैं अव्वल दर्जे का भुलक्कड़ (डंडा ताने) मुझे क्यों नहीं याद दिलाया।

सुधा : मैं तेरी जान लेकर रहूँगी।

सिन्हा : तूने मेरी जान ले ली है मेरी जान।

सुधा : मेरी जान। मेरी जान।। (सहसा) तू पागल।

सिन्हा : तू पगली की पगली।

सुधा : पगली। (सहसा) हट जा आँखों के सामने से। (चाकू गिराकर) अबे उल्लू शारदा प्रसाद।

सिन्हा : (डंडा फेंककर) पगली कहीं की।

[इस बीच नीलिमा का छिपकर इनके कई फोटो लेकर चल देना। उधर बीजी का दो गिलास पानी लाकर सुधा और सिन्हा को देना। पीकर सब कुछ घूर-घूरकर देखने लगना। इसी बीच पूनम और शोभा का कुछ खेलते हुए आना]

सुधा : अरविंद कहाँ है ?

सिन्हा : फिर वही ...फिर वही !

सुधा : तुम बीच में मत बोलो !

[चाकू डंडा छिपाये सिन्हा का अन्दर जाना]

सुधा : अरविंद कहाँ है ?

पूनम : अपने बेबी को "फीडिंग बाटिल" के साथ पालने में सुला रखना ही बेहतर है।

सुधा : पूनम। यही नाम है न ? बता, अरविंद कहाँ है ?

पूनम : उसका पता आपको होना चाहिए।



सुधा : उसका पता क्या है ?

पूनम : आपका पता है ?

[गाती हुई खेलने लगना]

ना ना ना ना ननाा।
ना ना ना ना ननाा।।
जहाँ अपना मना, वहाँ कच्चा चना
वहाँ सब कुछ मना
ना ना ना ना ननाा

[खेलते-गाते हुए भीतर जाना। सुधा का सब भूलकर पहले पूनम को फिर शून्य में देखते रह जाना। पृष्ठभूमि में रोशनी की आवाज। सुधा का भीतर जाना। रोशनी का प्रवेश]

रोशनी : जे लो, आज तो पूरै सन्नाटा। दरखत पै कोई परिन्दा भी न बोलै। माजरा का हैगा रे रोशनी ? जरा इक बीड़ी तो पील्लूं। सबका दरवज्जा बंद। कोई गल तो जरूर हुई होगी। अरें खोल्लो जी।

[भीतर से सिन्हाजी का निकलना। उन्हें देखकर]

रोशनी : कौंड़ ? कौंड़ है रे जुत्ती मारूँ।

[बाहर से श्रीखंडे का आना]

रोशनी : अरे श्रीखंडा। ये कौंड़ है मुसकंडा ?

श्रीखंडे : चुप। सिन्हा साहब, कारपोरेशन अफसर।...

**रोशनी** : सौरी सर।

[जमीन पर बैठकर माफी। सिन्हा का रोशनी को उठाना। रोशनी का बिगड़ जाना]

**रोशनी** : अरे हट्ट। मुए, तेरी हिम्मत कैसे हुई मेरे बदन को हाथ लगाने की? झाड़े मारूँ हाँ। माफी माँगी, और तो कुछ नहिं माँगा।

**श्रीखंडे** : बस, बस बस, हो गया। सर, इसकी बात का बुरा न मानियेगा, आपको कभी देखा ही नहीं। डर गई।

**रोशनी** : अरे डरे मेरी जुत्ती।

**सिन्हा** : गल्ती हो गई गल्ती।

**रोशनी** : चलो माफ कर देती हूँ जी। अनजाने में गल्ती किससे नेई होती। (दर्शकों से) क्यों जी, का मैं झुट्ट बौल्लूँ।

[जाते जाते, बाहर से आते हुए अरविंद से टक्कर]

**रोशनी** : जे ल्लो। जैसे बाप तैसे बेट्टा। मैं केहूँ—जब तुझ में इत्ती भी ताकत नेई, तो लौंडिया से इश्क करने क्यूं चला? ऐं....बोल...।

[अरविंद को दौड़ा लेना]

**रोशनी** : सिन्हा साहेब, सम्हालो अपना छोकरा। खूब घी-बादाम खिलाओ, डंड बैठक कराओ, नेई तो तुम्हारी जैसी हालत होग्गी।

[जाना]



**अरविंद** : डैडी, बात क्या है?

**सिन्हा** : (चुप)

**अरविंद** : श्रीखंडे, क्या है?

[श्रीखंडे का इशारे में]

**अरविंद** : डैडी, आज आप बाहर कैसे बैठे हैं? ममी कहाँ है?

**सिन्हा** : अब मैं तेरा वो डैडी नहीं, तेरी ममी का हसबैंड—कारपोरेशन का अफसर। श्री शारदा प्रसाद सिन्हा।

**अरविंद** : आपकी तबियत तो ठीक है न?

**श्रीखंडे** : (इशारे में)

**अरविंद** : जी, आपकी तबियत ठीक है न?

**सिन्हा** : जाकर अपनी ममी श्रीमती सुधा सिन्हा से पूछो।

[सुधा का आना]

**अरविंद** : ममी। ममी।

**सुधा** : मेरा नाम सुधा है।

**अरविंद** : ये क्या हो गया? किसी गलत फ्लैट में तो नहीं आ गया। सब चीजें तो वही हैं। (उसी पार्टीशन दीवार से) तुम्हारी खुशबू भी वहां है। तुम्हारी हँसी की झनझनाहट सुन रहा हूँ। तुम हो।

[पूनम आकर दूसरी ओर कान लगाए खड़ी सुन रही है। सिन्हा का उधर जाकर देखना। फिर सुधा का भी उधर जा देखकर गुस्से में]

**सुधा** : बीजी, बीजो, (बीजी का आना) ये क्या हो रहा है?

**बीजी** : क्या ?
**सुधा** : देख लीजिए । बेशर्म ।
**बीजी** : (इधर आकर) सिन्हाजी, ये क्या हो रहा है ? बेशर्म ।
**सुधा** : मेरा बेटा ऐसा नहीं ।
**बीजी** : मेरी बेटी ऐसी नहीं ।
**सुधा** : तुम्हारी जैसी...।
**बीजी** : ऐसी की तैसी ।

[लड़ाई]

**सिन्हा** : सुनिए...सुनिए, मेरी बात सुनिए ।
**नीलिमा** : (दौड़ी आ) प्लीज, मुझे एक शाट ले लेने दीजिए ।

[बीजी और सुधा का नीलिमा पर टूट पड़ना]

**सुधा** : तेरी ये हिम्मत ।
**बीजी** : अपने आपको समझती क्या है ?
**नीलिमा** : मेरा कैमरा । मेरा कैमरा । पुलिस को फोन करती हूँ ।

[एक ओर तीनों में झगड़े-लड़ाई का दृश्य दूसरी ओर पार्टीशन दीवार के इधर-उधर अरविंद-पूनम, बिल्कुल शांत । तीसरी ओर सिन्हा साहब को सम्हाले हुए श्रीखंडे]

**सुधा** : खबरदार । आज से यहाँ कोई नहीं हँसेगा ।
**नीलिमा** : गैर मुमकिन ।



**बीजी** : एक शर्त पर । तुम्हारी भी आवाज यहाँ नहीं आनी चाहिए ।
**सुधा** : अगर लड़कियों की हँसी सुनाई पड़ी तो ?
**बीजी** : अगर तेरी आवाज सुनाई पड़ी तो ?
**नीलिमा** : मुर्गियों की तरह लड़ना बंद करो ।
**बीजी** : मुर्गी होगी तू ।
**सुधा** : तेरे सात पुश्त ।

[लड़ाई दृश्य]

●

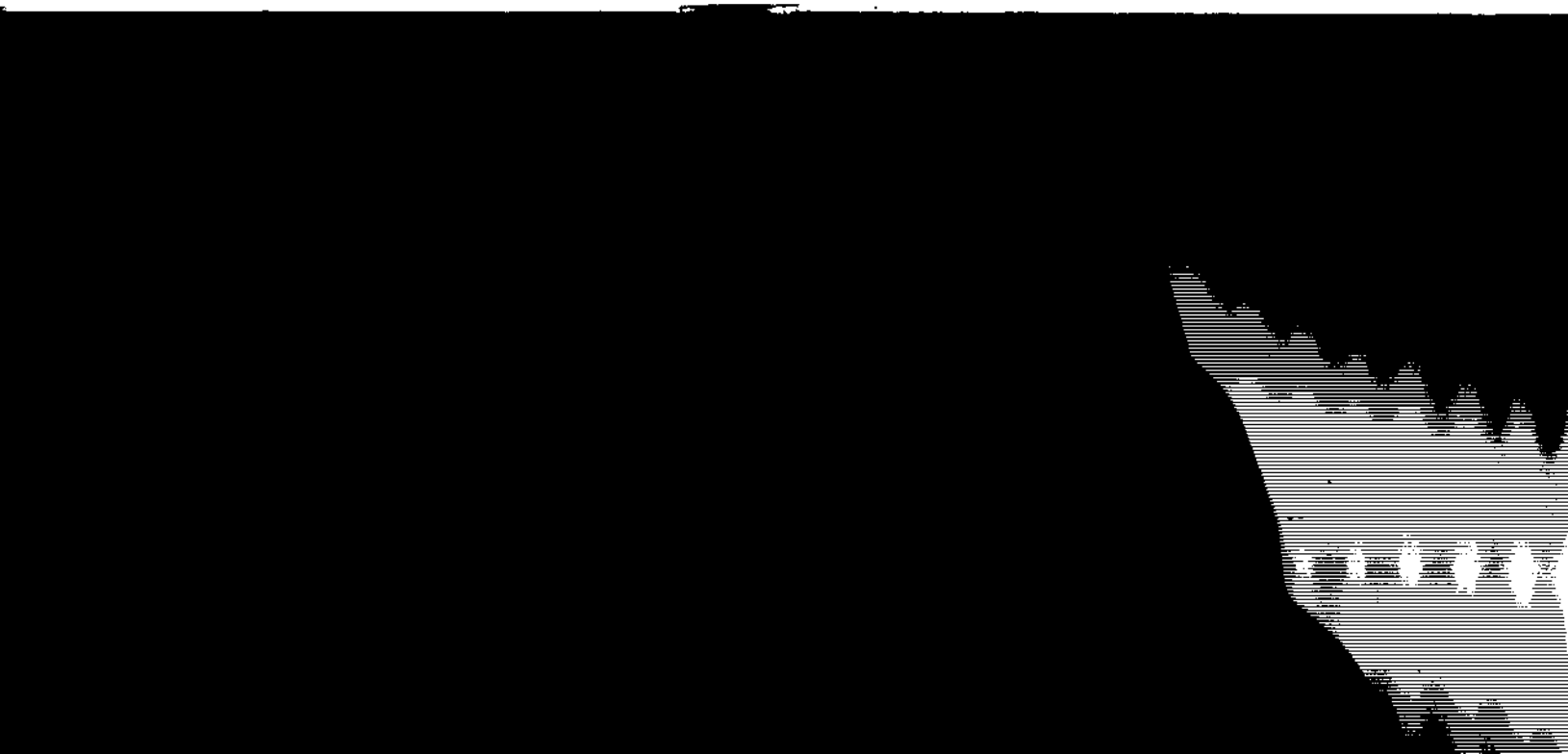

## तीसरा अंक

[अरविंद चुप खड़ा है। लोग अपनी-अपनी जगह से]

**सुधा** : इसे अफसर बनना है।

**सिन्हा** : इसे कसरत करनी चाहिए। रोशनी की बात ठीक है।

**नीलिमा** : पत्रकार बन सकता है। अंग्रेजी हिन्दी दोनों अच्छी है।

**श्रीखंडे** : कवि बन सकता है।

**शोभा** : खिलाड़ी बनकर देश के लिए स्वर्ण पदक।

**सुधा** : सिर्फ आई० ए० एस० अफसर होना है।

**सिन्हा** : अफसरी में कुछ नहीं।

**अरविंद** : आप सब बेवकूफ, उल्लू गधे।
ये मेरी जिन्दगी है। अपना मालिक मैं खुद हूँ।

**सुधा** : तेरी ये हिम्मत।

**सिन्हा** : क्या कहा ?

**नीलिमा** : ये सरासर बत्तमीजी है।

**श्रीखंडे** : अपने आपको समझता क्या है ?

[अरविंद अपनी पेटी निकालकर आक्रमण की मुद्रा में, सबको भगाता हुआ]



**अरविंद** : हट जाओ मेरी आँखों के सामने से।

**श्रीखंडे** : पागल तो नहीं हो गया ?

[सबका भाग जाना]

**अरविंद** : (अकेला) कोई अफसर बनाना चाहता है, कोई खिलाड़ी, पहलवान, कवि, पत्रकार...। सुन लो सब कान खोलकर। मैं जो हूँ वही बनूँगा।

[डरे हुए सिन्हा का आना]

**सिन्हा** : समझ गया बेटा, तू बिल्कुल सही है। पर एक बात है।
प्यार के बाद शादी करेगा न ?

**अरविंद** : कोई जरूरी नहीं।

**सिन्हा** : अच्छा। कहीं नौकरी तो करोगे ?

**अरविंद** : आप अपनी तरह मुझे क्यों देखते हैं ?

**सिन्हा** : बेटा, मैंने भी प्यार किया, फिर नौकरी, शादी। देखो क्या हुआ ?

**अरविंद** : मैं शारदा प्रसाद नहीं। अरविंद हूँ।

**सिन्हा** : बेटा, नाम से कोई फर्क नहीं पड़ता। सब वक्त के साथ "रुटीन" हो जाता है।

**अरविंद** : ऐसा आपका खयाल है। और आप अपने आप में कुछ हैं ही नहीं—न तब, न अब, न ममी न डैडी। ममी प्रिंसिपल के अलावा और कुछ नहीं, डैडी अफसर के अलावा और कुछ नहीं। (अभिनय) "मुझे याद क्यों नहीं दिलाया ? मैं तो शुरू से ही भुलक्कड़..."।

[इस बीच सुधा दरवाजे पर आ चुपचाप सब देख-सुन रही थी।]

**सिन्हा** : अब यहीं रहेगा ?

**अरविंद** : मुझे "डिस्टर्ब" मत कीजिए। जाइये यहाँ से।

**सिन्हा** : यहाँ अकेले क्या करेगा ?

**अरविंद** : अब अकेला नहीं हूँ। आप नहीं समझ सकते। हट जाइये।

**सिन्हा** : वक्त कैसे कटेगा ?

**अरविंद** : वक्त काटना आप लोगों की समस्या है—छुरी से काटो, कैंची से काटो। कागज, रस्सी फंदा से बाँधो 'प्राइवेसी, सीक्रेसी' से कतल करो वक्त को।

[जाने लगना]

वक्त मेरा।
मेरा साथी।
साथी ऐसा
खुशबू जैसा।।
खुशबू कैसा
उसके जैसा।
मेरे जैसा। खुशबू ऐसा।।

[बाहर निकल जाना।]

**सुधा** : डाक्टर बुलाओ मेरे बेटे को दिखाओ।

[सिन्हा का चुपचाप अंदर जाना। शोभा और पूनम का मुंह पर पट्टी बाँधे आना। उन्हें देखकर सुधा का घबड़ाकर नीलिमा को पुकारना]



**सुधा** : ये क्या है ?

**नीलिमा** : कोई खेल कर रही होंगी।

**सुधा** : बीजी बीजी। ये क्या है ?

**बीजी** : लड़कियाँ हँसे नहीं, खुद पट्टी बाँध ली है।

**सुधा** : अब इससे क्या होगा। मेरा बेटा मेरे हाथ से निकल गया। सुबह चला जाता। रात को लौटता। पढ़ना-लिखना छोड़ दिया। आकाश निहारना। उगते सूरज को देखना, चिड़ियों की बोली सुनना। हरियाली देखना, नदी किनारे-किनारे घूमना।

[सन्नाटा]

**सुधा** : कोई कुछ बोलता क्यों नहीं ? सब इस तरह चुप क्यों ?

**नीलिमा** : आपके फैसले के मुताबिक, लड़कियाँ हँसे नहीं।

**सुधा** : मगर इनकी हँसी मुझे "हांट" करती हैं। पेड़ के इन पत्तों से, इन दीवारों, घरों, पूरे माहौल से इनकी हँसी सुनाई देती है।

[मिसेज सिन्हा उन लड़कियों की ओर बढ़ती है। लड़कियाँ उनसे दूर भागती हैं]

**सुधा** : डियर मुझसे दूर मत भागो। डरो नहीं, मैं...मैं जूनियर स्कूल की बच्चियों की प्रिंसिपल हूँ। मैंने उनसे कभी बात नहीं की। जब वे शोर मचाती, हँसती, हुल्लड़बाजी करती, मैंने कभी बर्दाश्त नहीं किया। मारना, कमरे में बंद कर देना, "आई एम वेरी सौरी"। अपने बेटे अरविंद को भी मैंने



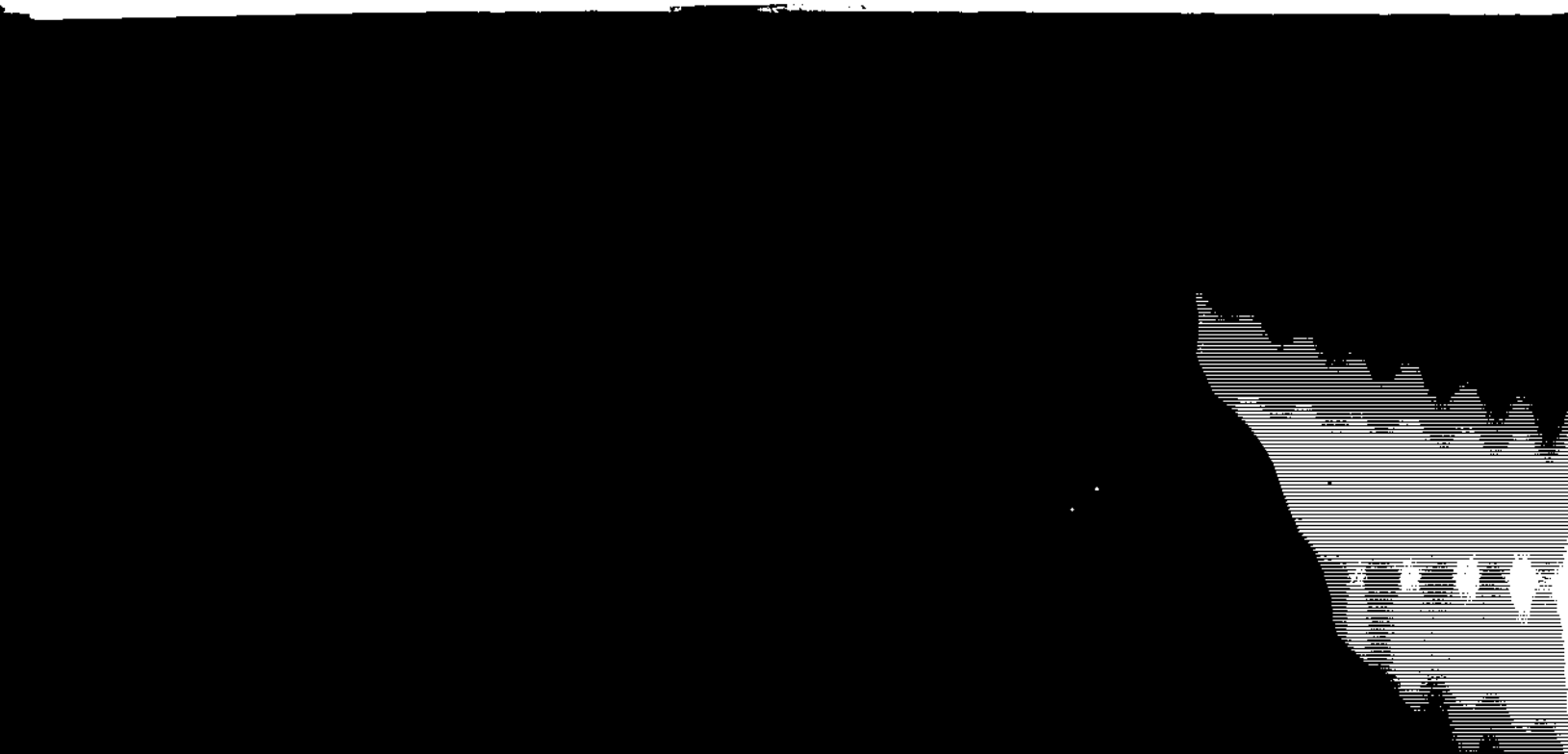

कमरे में...आई एम सौरी...तुम्हारी हँसी मुझे अच्छी लगती है। प्लीज, पट्टी खोल दो। (पट्टी खोलकर) हँसो, ऐसे क्यों देख रही हो ? हँसो।

[प्रकाश जाता है। जब प्रकाश लौटता है—पार्टीशन के इधर-उधर अरविंद और पूनम का दिखना। इधर नीलिमा और श्रीखंडे का उन्हें घूरना]

**श्रीखंडे** : कमाल देखो, कबसे खड़े चुपचाप बातें कर रहे हैं बिना किसी शब्द के।

**नीलिमा** : बेशर्म।

**श्रीखंडे** : अपन सब पर शक करती हो, तभी वजन नहीं घट रहा। दूसरों का चरित्र हनन करती हो, पत्रकार हो न—तभी तुम्हारी शादी नहीं हो रही। और मेरा तो सत्यानाश हो हो रहा—न कहीं नौकरी मिलती, न ना ना।

**नीलिमा** : मामा, वे चुपचाप क्या कर रहे ?

**श्रीखंडे** : कुछ नहीं करना ही असली कर्म है—अपन नाना के मुँह से सुना था।

**नीलिमा** : मामा। ये क्या देख रहे ?

**श्रीखंडे** : अपन को इनसे शिक्षा लेनी चाहिए। कैसे धैर्यवान, बलवान, रूपवान, धनवान। नहीं नहीं धनवान नहीं। हाँ चरित्रवान।

**नीलिमा** : क्या तुम चरित्रवान नहीं ?

**श्रीखंडे** : अपन तो नाम का श्रीखंडे, जैसे तू नाम की नीलिमा। अपण में अपना क्या है ? यहीं तो लड़कियों की हँसी—वाह। क्या हँसी (सहसा) अरे अरे रे रे दीवार चल रही है। ओए...बोए...ऐं...।



[दीवार का चलना। नीलिमा और श्रीखंडे का आश्चर्य से देखना। सुधा का आना]

**सुधा** : अरविंद।...पार्टीशन दीवार ? वहाँ कैसे ?

**श्रीखंडे** : दीवार चलत. है जी।

**नीलिमा** : हमने देखा।

**सुधा** : हर चीज में शक करती हो।

**नीलिमा** : क्यों चाकू का रहस्य खुला कि नहीं ?

**श्रीखंडे** : इसमे शक की तो बात ही नहीं, अपन दीवार को चलते देखा। ऐसा है जी, अपन का खयाल है उन दोनों की सोंसों से दीवार में जान आ गई। मतलब "करंट" आ गया। नहीं नहीं, हाथ मत लगाइए मिसेज सिन्हा।

[सुधा पर पार्टीशन छूते ही धक्का लगना]

**सुधा** : इतना खतरनाक। सुनते हो जी।

**श्रीखंडे** : (पुकारना) शारदा प्रसाद सिन्हा...।

[आना]

**श्रीखंडे** : इन्हें "शाक" लग गया।

**सिन्हा** : "शाक" तो लगना ही था। बेटे को हमने...।

**सुधा** : वो शाक नहीं।...कौन समझाये इन्हें।

[श्रीखंडे का सिन्हा को समझाना। नीलिमा का सुधा को]

**सिन्हा** : गैर मुमकिन, ऐसा हो नहीं सकता। मैं साइंस ग्रेजुएट।

[सबके "नहीं-नहीं" कहने के बावजूद सिन्हा का पार्टीशन छूना और उन्हें भी "शाक" लगना। भीतर से दौड़ी हुई बीजी, पूनम, शोभा का आना। सबका डरे हुए उस पार्टीशन की ओर इशारा करना। पूनम का उसे एक ओर कर देना]

**सुधा** : ये जादूगरनी, मंत्र मारने वाली।

**बीजी** : गल की ऐ ?

[श्रीखंडे का समझाना। शोभा और पूनम का हँसना]

**सुधा** : अपनी बेटी को समझाइए।

**बीजी** : बेटी की अपनी समझ है।

**सुधा** : आप समझती क्यों नहीं ?

**बीजी** : आप ही बड़ी समझदार हैं। दूसरों पर अपनी समझ थोपना। बेवकूफी की हद।

**सुधा** : हाय हाय। मुझे बेवकूफ कहा। कहाँ हो, सुनोजी।

**सिन्हा** : तुम्हें नहीं, मुझे कहा।

**सुधा** : तब तो सही कहा...लेकिन बीजी, तुमने मेरे बेटे पर असर डाल दिया। कितनी बार कहा पीपल जैसा भद्दा दरख्त सिर्फ जंगल के लिए। आबादियों



में तो फूल लगाए जाते हैं। या ज्यादा से ज्यादा ऐसे दरख्त, जो खूबसूरत हों, छोटे हों, हर वक्त जवान नजर आएँ। इस पेड़ ने मेरे बेटे को...।

**बीजी** : इस दरख्त को तुम्हारा बेटा दादा कहता है।

**सुधा** : हाय मेरे बेटे को तुम सब ने बरबाद किया।

**पूनम** : और उसे घर में बंद रखो।

**सुधा** : पूनम, डियर पूनम, मुझे तुमसे कुछ जरूरी बात करनी है।

**पूनम** : कभी अरविंद से भी की है ?

**सुधा** : मुझसे सवाल मत करो।

**पूनम** : क्योंकि आप प्रिंसिपल हैं ?

**सुधा** : सुनो।

**पूनम** : आप किसी की सुनती हैं ?

**सुधा** : अच्छा आप लोग प्लीज, मुझे पूनम से अकेले में...।

[सबका इधर-उधर छिपना। बीच-बीच में झाँकते रहना]

**सुधा** : पूनम डियर, किस क्लास में पढ़ती हो ?

**पूनम** : क्यों ?

**सुधा** : क्या करती हो ?

**पूनम** : आपसे मतलब ?

**सुधा** : ओ डियर, तुम खेलती भी हो और गाती भी ?

**पूनम** : देखिए, मैं आपकी बहू बनने नहीं जा रही।

**सुधा** : ओह माई डियर, तुम्हें यहाँ कैसा लगता है ?

**पूनम** : अपनी बात कीजिए प्लीज।

**सुधा** : देखो, बात ऐसी है, यू नो, आई मीन, यू नो, आई से, ओ० के० दैट्स राइट, यू सी...।

**पूनम** : जी जी जी जी जी जी जी ! आपके स्कूल में झक मारती हुई कोई छात्रा नहीं !

**सुधा** : देखो, यू सी माई प्वाइंट, अरविंद अभी कुछ नहीं है। उसे अपनी आई० ए० एस० की परीक्षा पास करनी है। वह "ब्रेलियन्ट" स्टूडेंट है। उसका भविष्य उज्ज्वल है।

**पूनम** : ब्रेलियन्ट स्टूडेंट कभी रहा होगा। आज वह बिल्कुल गधा है, गधा, बल्कि उससे भी बदत्तर, गधे की अपनी एक आवाज होती है। ढाँचू ढाँचू ढाँचू। और उसका भविष्य ? (जोरो का इशारा) जिसमें आप पल्थी मारकर बैठी होंगी (अभिनय) सुनते हो जी सिन्हा, आय मेरा अरविंद ?...ओह मेरी कमर...ओए मेरा ब्लडप्रेसर...मेरी टाँगें।

[छिपे सारे लोग देख-सुन रहे]

**पूनम** : अरविंद ने...।

**सुधा** : अरविंद नहीं मेरा बेटा।

**पूनम** : आपका बेटा नहीं अरविंद...। आज भी ऐसी घटिया यूनिवर्सिटी का पढ़ा हुआ कोई अपनी स्वतंत्रता के लिए इतना परेशान-दुखी-प्रयत्नशील हो सकता है, मुझे उसका साथ देना ही था। आज भी कोई "पावर" नौकरी, गुलामी, के खिलाफ सिर उठा सकता है, मुझे नहीं पता था। अरविंद के मुँह से पहली बार यह प्रश्न सुनकर—जो पढ़ता है, वह प्रेम क्यों नहीं कर सकता ?...मैं सचमुच...।



[भावावेश में चली जाना। एक एककर सबका निकलना। मिसेज सिन्हा को देखना]

**सुधा** : हाय। हाय। मेरा बेटा। मेरा बेटा कहाँ गया ?

**सिन्हा** : आ जाएगा। जाएगा कहाँ ?

**सुधा** : अरविंद। अरविंद।

[पुकारना। ढूंढ़ना]

**सिन्हा** : तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है, चलो अन्दर।

**सुधा** : दूर हो जाओ आँखों के सामने से।

[सिन्हा का अलग हटना]

**सुधा** : बीजी, कहाँ है मेरा बेटा ?

**बीजी** : वो कोई बच्चा नहीं है।

**सुधा** : शोभा कहाँ है ?

**शोभा** : मुझे तो आपसे पता चल रहा है—वो कहीं गायब है।

**सुधा** : नीलिमा।

**नीलिमा** : श्रीखंडे मामा से पूछिए।

**श्रीखंडे** : अरविंद कहता था—मैं इस गऊ माता के गोशाले में नहीं रह सकता।

**सुधा** : तूने क्या कहा ?

**श्रीखंडे** : मुझे कहीं नौकरी दिलाने का वचन दीजिए, मैं उसे ढूंढ़ लाऊँगा।

**सिन्हा** : इसी ने कहीं छिपा रखा है।

**सुधा** : नौकरी के लिए वचन देती हूँ।

**श्रीखंडे** : मैंने छिपकर सुना है—(अलग से जाकर) वह पूनम से

कह रहा था—इस जमीन पर कहीं रहने लायक जगह नहीं। किसी पेड़ पर घोंसला बनाऊँगा। पंछी-परिन्दे की तरह रहेंगे।

सुधा : हे पीपल देवता, मेरे बेटे की रक्षा करना।

[पृष्ठभूमि में वही बाइसकोप संगीत। स्त्री-पुरुष के साथ रोशनी का भी आना]

तना धिन ना ना ना ना।
तना धिन ना ना ना ना॥
तना धिन ना ना ना ना।
तना धिन ना ना ना ना॥

सुधा : दोहाई बाइसकोप महाराज की। मेरा बेटा न जाने कहाँ खो गया।

पुरुष : वह सिर्फ आपका बेटा नहीं, वह अरविंद था, जिसे आपने कभी नहीं देखा।

स्त्री : क्योंकि आपने अपने आपको कभी नहीं देखा।

पुरुष : तो...तो...ध्यान से अपने बाइसकोप में देखो। दिखाई पड़ा ?

सुधा : नहीं महाराज। वो कहाँ है ?

पुरुष : न पूरब, न पश्चिम, न उत्तर न दक्षिण।

स्त्री : ना पृथ्वी ना आकाश।

पुरुष : पीपल के पेड़ पर।

[सबका देखना]

सिन्हा : बिल्कुल सही जगह।

सुधा : अरविंद नीचे आओ।



अरविंद : अब मैं नीचे नहीं उतर सकता।

सुधा : अरविंद।

अरविंद की आवाज : हुकुम चलाना बंद करो।

सब : (एक संग) हुकुम चलाना बंद।

[अरविंद का प्रवेश]

अरविंद : अपनी गुलामी पै हँसो।

सब : अपनी गुलामी...।

[एक-एक का हँसने का प्रयत्न। आत्म व्यंग का उभर आना। स्त्री-पुरुष—संगीत]

सारे गम पद नीसा
सारे गम पद नीसा।
सानी दप मग रेसा
सा नी द प मग रे सा।
सारे गम पद नीसा॥

सब : (आलाप में)

पूनम : (आलाप एक स्वर में)

अरविंद : (उसी स्वर के साथ)

[सबका एक स्वर में आलाप]

पर्दा

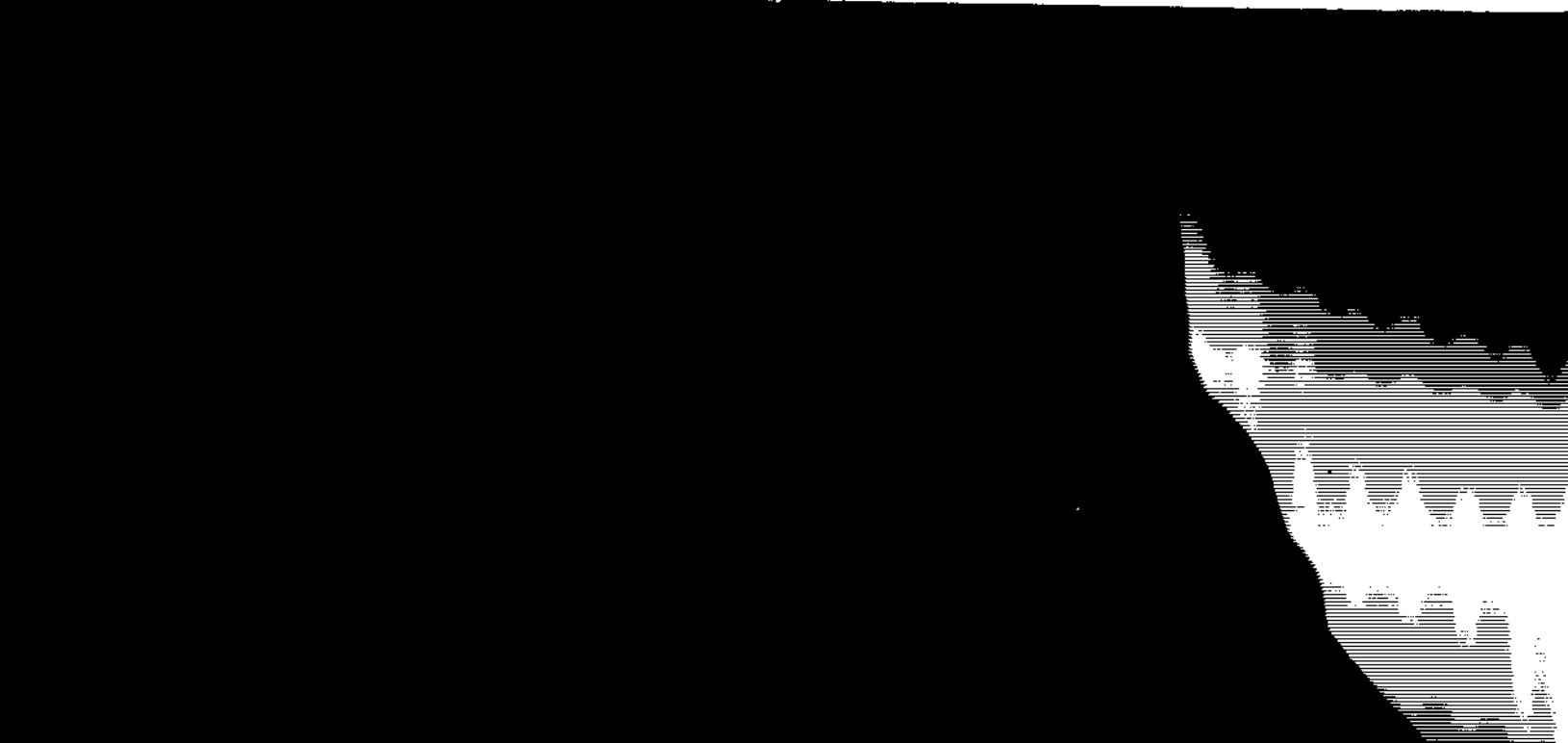

कह रहा था—इस जमीन पर कहीं रहने लायक जगह नहीं। किसी पेड़ पर घोंसला बनाऊँगा। पंछी-परिन्दे की तरह रहेंगे।

सुधा : हे पीपल देवता, मेरे बेटे की रक्षा करना।

[पृष्ठभूमि में वही बाइसकोप संगीत। स्त्री-पुरुष के साथ रोशनी का भी आना]

तना धिन ना ना ना ना।
तना धिन ना ना ना ना॥
तना धिन ना ना ना ना।
तना धिन ना ना ना ना॥

सुधा : दोहाई बाइसकोप महाराज की। मेरा बेटा न जाने कहाँ खो गया।

पुरुष : वह सिर्फ आपका बेटा नहीं, वह अरविंद था, जिसे आपने कभी नहीं देखा।

स्त्री : क्योंकि आपने अपने आपको कभी नहीं देखा।

पुरुष : तो...तो...ध्यान से अपने बाइसकोप में देखो। दिखाई पड़ा?

सुधा : नहीं महाराज। वो कहाँ है?

पुरुष : न पूरब, न पश्चिम, न उत्तर न दक्षिण।

स्त्री : ना पृथ्वी ना आकाश।

पुरुष : पीपल के पेड़ पर।

[सबका देखना]

सिन्हा : बिल्कुल सही जगह।

सुधा : अरविंद नीचे आओ।



अरविंद : अब मैं नीचे नहीं उतर सकता।

सुधा : अरविंद।

अरविंद की आवाज : हुकुम चलाना बंद करो।

सब : (एक संग) हुकुम चलाना बंद।

[अरविंद का प्रवेश]

अरविंद : अपनी गुलामी पै हँसो।

सब : अपनी गुलामी...।

[एक-एक का हँसने का प्रयत्न। आत्म व्यंग का उभर आना। स्त्री-पुरुष—संगीत]

सारे गम पद नीसा
सारे गम पद नीसा।
सानी दप मग रेसा
सा नी द प मग रे सा।
सारे गम पद नीसा॥

सब : (आलाप में)

पूनम : (आलाप एक स्वर में)

अरविंद : (उसी स्वर के साथ)

[सबका एक स्वर में आलाप]

पर्दा

# "हँसने वाली लड़कियाँ" जान-पहचान

पिछले वर्ष ४ मार्च १९८६ को 'हिन्दी रंग दिवस' के रूप में इस संकल्प के साथ मनाया गया कि प्रतिवर्ष इस विशेष दिन कोई भी एक मौलिक नाट्य कृति को खेला जाएगा। इसी के साथ नाट्यकर्मी डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल की विशिष्ट नाट्यकृति 'कथा विसर्जन' को हिन्दी रंग दिवस के सुअवसर पर प्रथम मौलिक कृति के रूप में खेले जाने का गौरव प्राप्त हुआ। यह वह पखवाड़ा है, जब उत्तर प्रदेश के बलिया नगर में ईस्वी १८७७ को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपना प्रसिद्ध नाटक 'सत्य हरिश्चन्द्र' पहली बार स्वयं प्रस्तुत किया था और स्वयं ही हरिश्चन्द्र की भूमिका निबाही थी। हिन्दी रंग दिवस के रूप में इस दिन का अनुष्ठान वांछित उपलब्धियों के हेतु किए गए उस नाट्य-यज्ञ के समनुरूप है, जिससे हमें अपेक्षा और प्रत्याशा है, एक ऐसे हिन्दी नाट्य जगत के निर्माण की जो हमारी अपनी धरती, संस्कृति और परम्परा की पहचान बनकर हमें अपनी शक्ति प्रदान करे। ऐसी पहचान जो हमारे जीवन को निरंतर बहती जीवनधारा के मूल भाव से हमें जोड़े। अर्थात जो व्यक्ति से 'इंडीविजुअल' बने जीव को स्वभावी बनाकर सामाजिक बनाए। नकारात्मक, संशयालु स्वभाव के दायरे से बाहर निकालकर स्व के भाव में मर्यादित कर स्वयं को सर्जक और नियामक बनाए और व्यक्ति-व्यक्ति को सामाजिक बनाकर मानवता की एकसूत्रता में बाँधे।

इस वर्ष, उसी दिन ४ मार्च १९८७, दूसरे रंग दिवस और लाल की षष्टि पूर्ति दिवस के शुभअवसर पर सम्पन्न हुए रंगभूमि प्रहसन

'हँसने वाली लड़कियाँ' में रंगकर्मी लाल का निर्धारित लक्ष्य इसी अखंड ऐक्य-सूत्र को बाँधने का है। इस प्रहसन से नाटककार का प्रयोजन मानव को विशुद्ध, विमल, निःस्वार्थ अनुराग के सूत्र में बाँधकर स्वावलम्बी, स्वतंत्र बोध में आबद्ध करने का है, जो अपना खोया हुआ नैसर्गिक आह्लाद देने वाला है।

मेरी यह भाषा पढ़कर आप जरूर चौंक रहे होंगे कि यह मैं कैसी भाषा लिख रही हूँ। विश्वास कीजिए, यह भाषा लिखकर मैं स्वयं ही आश्चर्य चकित हूँ। मेरा यह आश्चर्य उस दिन से प्रारंभ हुआ जब बहुप्रचलित शब्द रंगमंच को पूर्णतः त्यागकर लाल ने रंगभूमि शब्द की सिद्धि की। विशिष्ट नाट्यकृति 'कथा विसर्जन' के प्रदर्शन के दौरान ही मुझे रंगभूमि के सारतत्व का अपने जीवन में पहली बार आभास हुआ। रंगभूमि पर 'कथा विसर्जन' में पहली बार कथा की पुनःप्रतिष्ठा और नट-नटी के अवतरण के विशिष्ट संदर्भों को उभारा गया है। अपने शास्त्र और लोक को अपने वर्तमान समय के जीवन प्रसंगों से कलात्मक स्तर पर युक्त कर पहली बार प्रस्तुत किया गया है।

यूँ तो लाल की सम्पूर्ण नाट्य यात्रा किसी न किसी स्तर से पश्चिमी नाट्य के विरुद्ध सतत संघर्ष है। लेकिन 'कथा विसर्जन' में पहली बार लाल ने यह तथ्य प्रतिपादित करने का सफल प्रयास किया कि कहानी केवल पश्चिम की ही हो सकती है। हमारी अपनी तो कथा है। कहानी अंग्रेजी 'स्टोरी' का पर्याय है जो न हमारी कभी थी और न ही हो सकती है। लाल के इस दृष्टिकोण के संकेत उनकी अनेक नाट्यकृतियों में है। फिर भी मंच से भूमि पर उतरते हुए रंगकर्मी लाल में यह चेतना यहाँ अधिक बलवती हो उठी है। 'बलराम की तीर्थयात्रा' में हमें इसकी पहली बार अनुभूति होती है। उसी सांस्कृतिक चेतना में विशिष्ट कथा की सृष्टि, लाल ने 'नरसिंह कथा' और 'कथा विसर्जन' में की।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि ड्रामा, नाटक के पर्दे में थियेटर अर्थात् रंगमंच अवधारण को हम पर कंपनी राज के दौरान थियेटर कम्पनियों



और उस विषय से सम्बद्ध पश्चिमी विद्वानों द्वारा विधिवत हम पर थोपा गया। खेद की बात यह कि हमने अपनी वास्तविकता की जान, शोध किए बिना पूर्णतः उसे स्वीकार ही नहीं प्रतिष्ठापित भी कर लिया। प्राचीन संस्कृत नाट्य ग्रन्थों की जिस सामग्री को पश्चिमी विद्वानों ने उलट फेर करने के बाद 'इंडियन थियेटर' और 'हिन्दू थियेटर' आदि शब्द और अवधारणाएँ जो अपनी पुस्तकों में प्रस्तुत किया, हमने उसका अध्ययन तो क्या अवलोकन भी नहीं किया। और तथ्यों की शोध का कभी प्रयास नहीं किया। गुलामी के बंधन में पराई चीजों को ही अपना मान लिया और अपनी सच्चाई को कभी जानने की कोशिश ही नहीं की। नहीं तो क्या हम रंगमंच को अपना कह सकते ? यह प्रश्न लाल ने पहली बार किया। उन्होंने कहा कि तथ्यों की सही जानकारी संभवतः हमें उस भूल और भ्रम से जरूर बचा पाती। भरत के नाट्य शास्त्र अथवा धनंजय के 'दशरूपकम्' में भी जो शब्द व्यवहार में आया है वह रंग अथवा रंगपीठ है। रंगमंच शब्द टीकाकारों द्वारा थियेटर और ड्रामा के दबाव में केवल सुविधानुसार जोड़ा गया प्रतीत होता है।

लाल के 'कथा विसर्जन' की भूमिका में आई हुई कितनी ही व्यंजनाओं—जैसे चरित्र नहीं पात्र, एक्टिंग नहीं अभिनय, एक्ट नहीं अंक, प्लाट नहीं कथा आदि को ध्यान से देखने पर मेरा आश्चर्य बढ़ता ही चला गया। जब लाल 'हँसने वाली लड़कियाँ' पर कार्यरत थे तो उनके मुँह से नाटक नहीं रूपक सुनकर मैं चौंकी तो अवश्य, लेकिन अनायास ही बड़ी सहजता से सहमत हो गई। सहमति के बाद के क्षणों में रूपक और नाटक को समझने के प्रयास में मैं यह जान पाई कि वास्तव में हमारे संस्कृत साहित्य में नाटकम् शब्द का व्यवहार हुआ है। धनंजय ने दशरूपकम् में रूपक के जिन दस आयामों का (डिम व्यायोग, वीथि, प्रहसन आदि) वर्णन किया है उसमें नाटकम् प्रथम है। नाटकम् को रूपक के जिस विशेष रूप में देखा गया है, उससे स्पष्ट है कि जिस अर्थ में हमने नाटक को अपनाया वह अंग्रेजी ड्रामा का ही पर्याय बना रहा

और इसीलिए नकली अर्थ के बोझ को ही हम ढोते रहे। तभी तो लोक में प्रचलित नाटक शब्द का व्यवहार (नाटक क्यों कर रहे हो, नाटक करना बंद करो।) ढोंग बेईमानी करने अथवा नकलीपन का ही परिचय देता है। 'एक्टिंग' शब्द का प्रयोग भी हमारे यहाँ आरोपण, झूठ या नकल के ही अर्थ में ही होता है। जगत व्यवहार के यही संकेत हमें नाटक से रूपक दिशा की ओर जाने का इशारा कर रहे हैं।

संस्कृत आचार्य मम्मट ने 'काव्य प्रकाश' में रूपक के नाटकम् को काव्य का उत्कर्ष, चरमबिन्दु (काव्यांतक नाटकम्) माना है। यह नाटकम् प्रेक्षणीय होने के कारण दृश्यगत है तभी रूपमय है। इस प्रकार नाटकम् रूपक का एक विशेष प्रकार है। धनंजय ने नाटकम् को रूपक विशेष का प्रकरण कहा है। लेकिन रूपक का अर्थ दशरूपकम् में दिए गए तत्वरूप का आरोपण मात्र नहीं है, ऐसी लाल की मान्यता है। लाल के अनुसार रूपक, कथा, पात्र और (भाव से निस्सृत) रस का त्रिभुज है जो परस्पर एक है। एक से ही दूसरे का उदय। एक से दूसरे का रूप।

आज जिस नाटक (प्लाट स्टोरी) को हम अज्ञानवश अपना समझ बैठे हैं, वह एक वर्ग विशेष के ही कारण हो सकता है जो स्वभावतः समाज के विभिन्न भागों में बँटवारा करने वाला है। दूसरी ओर 'कथा' भारतीय समाज के भीतर से उभरती है। पूरे समाज से उसके सूत्र हर स्तर से प्रत्येक क्षेत्र में फैले हैं। पात्र से कथा अथवा कथा से पात्र को अलग नहीं किया जा सकता। कथा, पात्र, सहृदय के आह्लाद, उल्लास को एक साथ लेकर चलने वाले इसी रूपक का प्रहसन है – 'हँसने वाली लड़कियाँ।' यह अनवरत बहने वाली जीवन धारा के रंगों का सुंदर संगम है। महानगरी के मध्यवर्गीय जीवन जीते हुए तीन विभिन्न प्रान्तों के मध्य, ग्रामीण परिवेश को समेटे हुए बायस्कोप दिखाने वाले नट-नटी के जोड़े का एक भूमि पर एक साथ खड़े हो जाना एक विशेष (हृदय को प्राप्त होने वाले) सुख का परिचायक है।

इस सम्बन्ध में यह भी द्रष्टव्य है कि ड्रामा और थियेटर का एक



बड़ा दुष्परिणाम भारतवर्ष में यह भी हुआ कि यहाँ का विशाल दर्शक वर्ग दो वर्गों में बँट गया—एक ग्रामीण दर्शक वर्ग और दूसरा शहरी दर्शक वर्ग। ऐसा पहले हमारी परंपरा में कभी नहीं रहा है। हालाँकि, जीवन प्रक्रिया में आर्थिक दबाव के कारण वर्ग भेद होते रहते हैं। और आज विज्ञान के युग में जीने वाला मानव, पश्चिमी सभ्यता की अंधी दौड़ में शामिल होने और सफलता के सपने संजोने के प्रयत्न में दिनरात मेहनत कर रहा है, इस तथ्य से भी बेखबर कि दौड़ की आँधी में समूल जीवन उखड़ने के बाद जीवन की हरियाली नहीं, मुर्दनी उसका स्वागत करती है।

इसी के विरुद्ध 'हँसने वाली लड़कियाँ' प्रहसन की कथावस्तु अपनी आर्द्रता, उल्लास, उत्साह है। अर्थात नट-नटी वर्तमान समय की 'बायस्कोप' वाली जोड़ी ने लोक और शास्त्र, ग्राम और महानगर जो सर्वथा आज एक दूसरे से विभक्त और दूर हैं, दोनों को एक सूत्र में जोड़ने का सफल प्रयत्न किया है। प्रहसन का प्रारंभ उन्हीं के गायन से होता है—

'अपन कान माँ सोने की बालियाँ
देखो-देखो हँसन वाली छोरियाँ
अपन आँखों में सुर्मेदानियाँ
देखो-देखो हँसन वाली छोरियाँ,

प्रहसन के प्रारंभ में जहाँ एक ओर ड्रामा और थियेटर के कुप्रभाव से हिंदी रंगभूमि की दुर्दशा की ओर इशारा किया है वहीं दूसरी ओर हिन्दी रंगपीठ पर रूप, रस, ग्रंथ, स्पर्श, नृत्य और गायन की जैसे वर्षा हो रही है।

इस संदर्भ में यह द्रष्टव्य है कि अपने परिवेश को उसकी सम्पूर्णता में लेकर चलना लाल के नाट्य लेखन की महत्वपूर्ण विशेषता है। जहाँ एक ओर उन्होंने महानगर और ग्राम को जोड़ कर मध्यवर्गीय समाज के लोगों की प्रकृति के अवलोकन को प्रहसन की पूर्व-पीठिका का आधार

बनाया है, वहीं दूसरी ओर प्रहसन के पूर्वरंग में उभरने वाले स्वर और संगीत की पृष्ठभूमि में देश काल वातावरण को भी अत्यंत सहजता से उभारा है। भारतीय लोक को महानगरी जीवन से परिचित करवाकर झूठे संरक्षण का प्रलोभन देकर उसके मूल से उखाड़ने के लिए भारतीय राजनीति दोषी है। उखड़ने के इसी अहसास की संवेदना बायस्कोप दिखाने वाले स्त्री-पुरुष के स्वरों में है, जिन्हें राजधानी दिल्ली में बड़े-बड़े प्रलोभन देकर कला प्रदर्शन हेतु बुलाया तो गया, परंतु बाजारू मतलब पूरा होते ही उन्हें असहाय अवस्था में छोड़ दिया गया। यहाँ तात्पर्य हमारे ऐतिहासिक संदर्भों से भी है, जहाँ समाज को राजनीति के खिलाफ सांस्कृतिक स्तर पर अपने प्रतीकों की तलाश, प्रबुद्ध सामाजिकों द्वारा की जानी अभी शेष है। ऊपरी सतह पर ही जीवन यापन की यह प्रक्रिया जो हमें विदेशी राज व्यवस्था से विरासत में मिली है, हमें उसका प्रहसन बनाना है और सत्य का अनुसंधान करना है।

इसी लक्ष्य निष्ठा में ऊपर से हल्का फुल्का प्रतीत होने वाला यह प्रहसन विभिन्न स्तरों पर अस्मिता बोध के विशिष्ट रंग अपनी भूमि पर बोता है।

महानगर में रहने वाले तीन विभिन्न प्रान्तों के तीन परिवार, एम० आई० जी० फ्लैट्स में एक दूसरे से सटे हुए रहते तो हैं, लेकिन उनमें कोई मानवीय संबंध नहीं हैं।

संबंधों के दिवालियेपन की इसी दुर्दशा पर, एल० आई० जी० फ्लैट्स से माँ के साथ आई दो लड़कियाँ सहज ही हँस देती हैं। और उनकी यही हँसी इस प्रहसन की कथा बन जाती है। मुझे पहली बार लगा कि भारतीय लोक के रंग में रंगे लाल ने यह तत्व उस चित्त से उठाया है, जहाँ स्त्रियाँ ब्याह शादी में पुरुषों के अहंकार को नष्ट करने के लिए कभी प्यारसिक्त गालियाँ देती हैं तो कभी मज़ाक उड़ाती हैं। वही तत्व इस प्रहसन के रूपकत्व में बड़े चटक रंगों से उभारा गया है।

लड़कियों की सहज हँसी को लाल ने एक अस्त्र के रूप में भी



इस्तेमाल किया है। हमारे यहाँ स्त्री का सौन्दर्य हँसी नहीं, विनम्रता और लज्जा माना गया है। प्रस्तुत संदर्भ में हँसी नारी स्वातंत्र्य का बोध है। जबकि पारंपरिक संदर्भ में आँसू को ही नारी का नारी द्वारा आरोपित मुख्य अस्त्र माना जाता है। प्रहसन में दोनों लड़कियों की हँसी विरोध है, जिसकी पहचान अन्य दो परिवारों के दोनों स्त्री पात्रों का नहीं है। इस जानकारी के लिए जिस मानवीय संबंध बोध की अपेक्षा है वह उन दोनों में नहीं है। संबंध न होने पर व्यक्ति स्वयं से टूटकर 'इंडिविजुअल' हो जाता है। स्वभाव से अलग होकर वह मूल से ही अलग हो जाता है। मूल से उखड़ने के बाद वह न तो स्वयं प्रसन्न रहता है और न दूसरे को प्रसन्न देख पाता है। यही कारण है इस प्रहसन की सुधा सिन्हा, शोभा और पूनम की हँसी को सह नहीं पाती और न ही अपने बेटे अरविंद को उस सहज हँसी का भागीदार बनने देना चाहती। कुंठित श्रीमती सुधा सिन्हा एक पार्टीशन दीवार भी अपनी तथाकथित परतंत्रता को बरकरार रखने के लिए खड़ी करवाती है। पार्टीशन दीवार के संदर्भ में भी गहरे अर्थ की व्यंजना है। प्रत्येक 'इंडिविजुअल' अपने ढंग से ही हर वस्तुस्थिति को देखता है। चैतन्य के जागृत न होने के कारण वह बाहर के वातावरण के दायरे से अपने भीतर के दायरे में आने के लिए स्वयं पर आरोपित सीमा रेखा को पार नहीं कर सकता। परिणामस्वरूप वह स्वयं को जान ही नहीं पाता। श्रीमती सुधा सिन्हा एवं नीलिमा देशपांडे दोनों स्त्री पात्र, दंभी, पाखंडी वृत्ति की शिकार हैं। स्वभाव की विकृति दूसरे की स्वतंत्र चेतना से टकराकर समाज में प्रदूषण का कारण बनती है। यही विषय है इस प्रहसन का।

'हँसने वाली लड़कियाँ' प्रहसन में कथा, पात्र और भाव की तीनों अविभाज्य रेखायें जिनसे भारतीय नाट्य का त्रिभुज बनता है, जो हिन्दू धर्म की भी आधार भूमि का प्रतीक चिह्न है, उसको उसी रूप में हँसने वाली लड़कियाँ में अनुभूत तथा प्रस्तुत किया गया है। उदाहरण के लिए प्रहसन में चरित्रों को पात्र बनाकर प्रस्तुत करने वाले बायस्कोप दिखाने

वाले लोग हैं। महानगर में टेलीविजन इत्यादि के प्रभाव से अपना बायस्कोप न दिखा पाने के कारण ये लोग एम० आई० जी० फ्लैट्स के तीन परिवारों के चरित्रों को ही अपने खेल का पात्र बना लेते है। उन्हीं से कथा बनती है और उन्हीं से पात्र हैं। और उन्हीं दोनों तत्वों से इस प्रहसन का भाव जुड़ा है। एक से दूसरे को अलग नहीं किया जा सकता। ठीक उसी प्रकार जैसे त्रिभुज की किसी भुजा को अलग करते ही त्रिभुज बिगड़ जाता है। कोई एक भुजा निर्बल होते ही त्रिभुज अपना आकार खो देता है, उसकी स्वायत्तता बिखर जाती है।

इस प्रहसन से अपने यहाँ के रूपक और आधुनिक नाटक (ड्रामा) का बुनियादी अंतर रचना और प्रस्तुति दोनों धरातलों पर स्पष्ट है। पश्चिम का ड्रामा, 'आडिटोरियम' में बैठे दर्शक समूह को, निर्देशक, कलाकार दोनों मिलकर ऐक्शन के वेग, तकनीकी प्रयोग, प्रकाश व्यवस्था, मंच साज-सज्जा, संगीत नहीं ध्वनि प्रभाव से आतंकित किया जाता है। वह बीते हुए पल से उस पल विशेष के लिए पूर्णतः काट किया जाता है। इसके ठीक विपरीत 'हँसने वाली लड़कियाँ' ड्रामा के उसी अलगाववाद, आतंकवाद के विरुद्ध हर स्तर पर एक संकल्पात्मक कर्म है। इस संदर्भ में इस प्रहसन का रंग पक्ष विशेष रूप से दर्शनीय है, जिसे लाल ने हल्के रंगों से, भीतर बाहर दोनों ओर रंगरंजित करने का सफल प्रयास किया है। ऊपर से हल्के-फुल्के इस प्रहसन का प्रस्तुतीपक्ष कलात्मक सरोकार की अपेक्षा करता है। ड्रामा, थियेटर का निर्देशक इस प्रहसन को प्रस्तुत करने में असमर्थ होगा। उसका कारण, वहीं ड्रामा बोध—तीनों तत्वों को अलग-अलग करके देखना। और वह भी सूक्ष्म को न देखकर स्थूल को देखना।

इस तत्व का प्रतिपादन पहले भी हम कर चुके हैं कि हँसी इस प्रहसन की विशेष शक्ति है। हँसी की शक्ति स्थूल में नहीं सूक्ष्म में है और उस सूक्ष्म की अनुभूति ही प्रहसन की जान है। एक्टिंग की नहीं अभिनय की अपेक्षा है जहाँ मात्र संवाद नहीं बोलने हैं, बल्कि मानवीय



संबंधों के रंग की अनुभूति से स्वयं पहले कलाकार को अवगत होना है और फिर उसी दिशा में पूरे दर्शक वर्ग को अनुभूति के सहारे उसके रस में सराबोर करना है। वही अभिनय है, अर्थात किसी एक दिशा की ओर ले जाना। जहाँ पात्र, परिवेश, वातावरण, संगीत लय की ताल पर सब एक सूत्र में बँधे जुड़े हैं। जहाँ किसी एक को भी दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। संभवतः इस स्तर पर प्रस्तुतीकरण के लिए सक्षम निर्देशक का उभरना अभी बाकी है। इस प्रहसन का यह आह्वान सुनहरे भविष्य में अवश्य स्वीकार्य हो सकेगा।

प्रस्तुतीपक्ष के संबंध में महानगरी के दर्शक को भी हम थोड़ा जान लें। काफी हद तक महानगरी दर्शक वर्ग उपभोक्ता वर्ग है। जहाँ तर्क है, प्रश्न है, लेकिन समाधान नहीं है। उसका जीवन स्वभावतः मुक्त न होने के कारण, वह बाहर के वातावरण में भी मुक्त नहीं होता। जबकि सही दर्शक सहृदय है, उसका अन्तःकरण सुमन की भाँति खिला रहता है। महानगरीय जीवन में हर वस्तु, तथ्य को हम हीन भावना से देखते हैं। दूसरे के कर्म की ऊँचाई अथवा अच्छाई को जानबूझकर स्वीकार करना नहीं चाहते। उसकी दृष्टि (अवलोकन प्रक्रिया) ही अर्थ प्रधान हो जाती है।

जानने, अथवा शोधने में देखने का बहुत महत्व है नाट्य के संबंध में। अवलोकन प्रक्रिया कथा पात्र एवं भाव के त्रिभुज का केन्द्र बिन्दु है, जिसके अभाव अथवा कमजोर पड़ जाने पर अनुभूति का भाव कलाकार और दर्शक दोनों के स्तर पर बिखर जाएगा। भाव की अनुभूति करने और कराने में देखने का विशेष महत्व है। दर्शक के देखने की शुद्ध प्रक्रिया, कला के स्तर पर एक तरह के आरोपण का खंडन कर सकेगी और प्रहसन के भीतर के रूपक को आस्वादन का विषय बना सकेगी, ऐसी आस्था है लाल की। वह यह मानते हैं कि असली दर्शक तो हमारे लोक में बसा है, जो भाव को निर्मलता में ग्रहण कर सकता है। तर्क के मध्य भाव के रस का आस्वादन संभव नहीं है, ऐसा उनका विश्वास है।

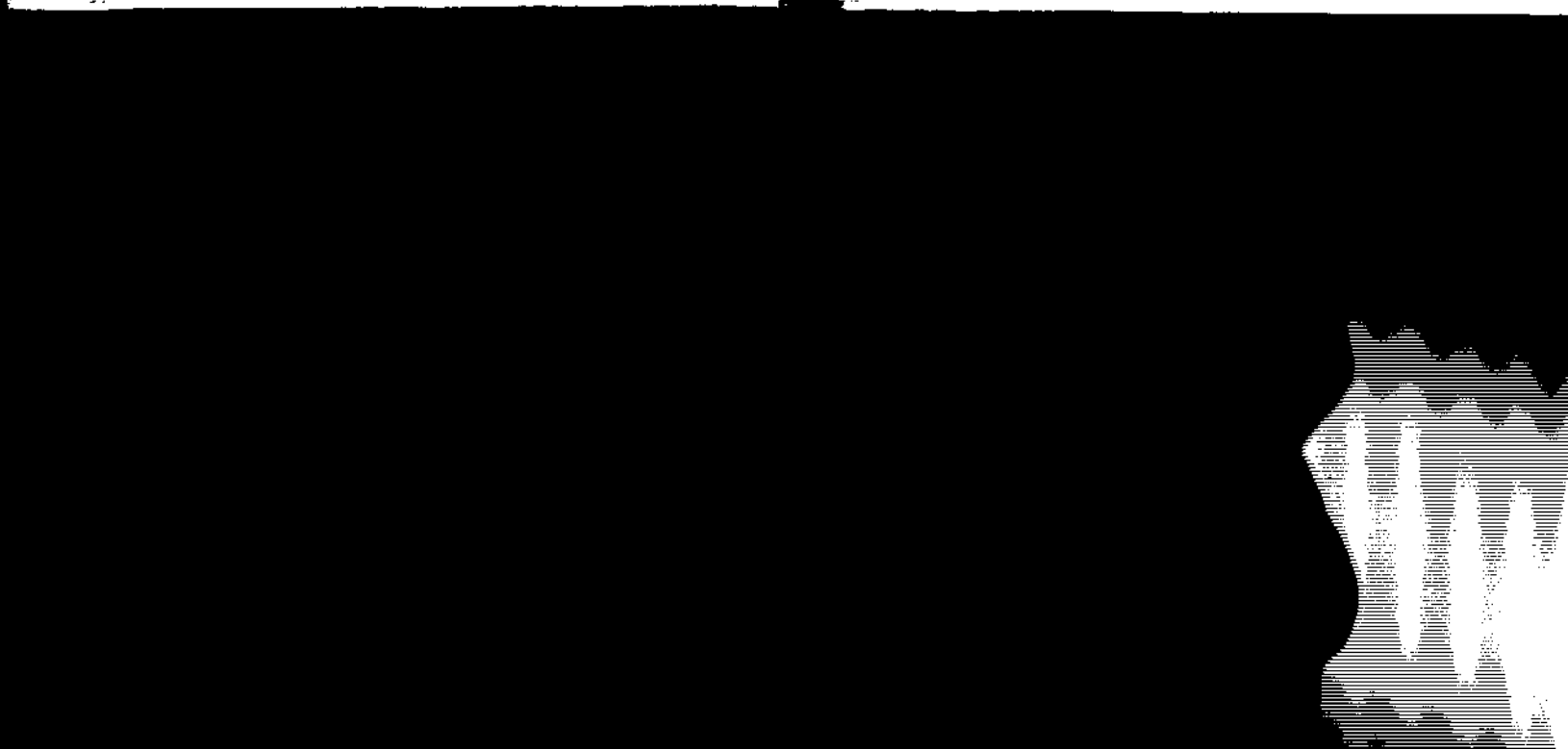

महानगरी दर्शक वर्ग से सम्बन्धित ये बातें राजधानी दिल्ली के संदर्भ में विशेषकर सही बैठती हैं। बारह वर्षों तक आई० आई० टी० मद्रास में रहते हुए मुझे वहाँ के दर्शक वर्ग और रंगभूमि को देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। दक्षिण भारत की महान रंगकर्मी श्रीमती रुक्मिणी देवी के निर्देशन में कुछ महान कलाकारों की कला, कला की अनुभूति के भाव को ग्रहण करने के पलों में वहाँ के कला पारखी निर्मल हृदय दर्शक के बीच बैठकर मुझे असीम सुख और गौरव का आभास मेरे अन्तस ने पाया है। दर्शक का वह अनिर्वचनीय सुख आज भी मुझे अनायास अपनी ओर खींचता है। और मेरा अन्तस आज आत्मविभोर दर्शक को ही खोजता है। स्वयं को हर पहलू से जानने पहचानने शोधने की इतनी बड़ी चुनौती आज से पहले कभी किसी समय में नहीं उभरी, क्योंकि जान-पहचान, हर स्तर पर ऐसी खोज है जिसके अभाव में यह जीवन निरर्थक है, यह प्रहसन हमसे यही कहता है। कहता है कि देखने का अभाव ही तथ्यों के धरातल पर हमें सत्य, असत्य की प्रतीति से परे रखता है। और इस तरह जो साहित्य सर्जन होता है, वह भी तथ्य रहित होने लगता है। पिछले सौ वर्षों में जो प्रबुद्ध लेखक वर्ग पनपा है वह इसी महानगरी जीवन के प्रभाव की देन है। हम जो कुछ भी करते हैं, दूसरे के लिए करते हैं, स्वयं हीन भावना में जीने के कारण अर्थात दूसरों को खुश करने के लिए ही करते हैं, अपने लिए कुछ नहीं करते।

यह प्रहसन हम दर्शक समाज से हर स्तर पर यही कहता है कि जो हमारा अपना है, विवेक से देखो जो सही है, उसे प्रतिष्ठित करना है।

'हँसने वाली लड़कियाँ' प्रहसन और 'कथा विसर्जन' को लाल की लेखन प्रक्रिया का हिन्दी नाट्य को अभूतपूर्व देन मानती हूँ। इन्होंने तुच्छ समझे जाने वाले ग्राम जनमानस को वांछित, वास्तविक आसन पर बैठाकर पहली बार उसकी ऊँचाई का आभास महानगरी जीवन को, स्वयं महानगर में रहते हुए कराया है। यहाँ की जीवनयापन प्रक्रिया में उलझे, चरित्रों को पात्र बनाने का अदम्य साहस वायस्कोप दिखाने वाला



स्त्री-पुरुष का जोड़ा कर रहा है और अन्ततः सत्य की प्रतीति कराने में सफल भी होता है। श्रीमती सुधा सिन्हा का पात्र भी भारतीय लोक की उस परम्परा से अवगत होता है जहाँ पीपल के पेड़ की आस्था आर्द्रता से सींचा जाता है। कभी-कभी सोचती हूँ कि क्यों नहीं लाल का व्यक्तित्व, रंगकर्म आधुनिक थियेटर और ड्रामा के दबाव में दब गया? ऐसा दबाव जिसमें वर्ग की बढ़ती खाइयाँ, मुंशी प्रेमचन्द जैसा महान सर्जक भी नहीं पाट सका और भारतीय लोक को हीनभाव से बचा नहीं पाया। परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि नाट्यकार लाल ने उस लोक को अपनी रचना में जीवन की अखंड विविधता में देखा है।

इन्होंने भारतीय जीवन को, ग्राम से महानगर के प्रत्येक पहलू को जिया है, देखा है शोधा है, इसीलिए यह संभव हो सका है। भारतीयता के प्रति इनमें ऐसी गहरी निष्ठा है कि आधुनिकता के पर्दे में जो पश्चिमी ड्रामा थियेटर यहाँ पिछले डेढ़ सौ वर्षों से विधिवत आरोपित किया जा रहा है, उसका पर्दाफाश कर अपने सनातन नाट्य और रूपक सत्य को हर स्तर पर यहाँ प्रतिष्ठित करने का संकल्प लिया है।

नई दिल्ली
१२ मार्च, १९८७

—माया गुप्ता
९१, माडल बस्ती
रानी झाँसी मार्ग
नई दिल्ली-११०००५